UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180538
UNIVERSAL
LIBRARY

वचन का मोल

लेखिका
उषादेवी मित्रा

सरस्वती प्रेस बनारस

प्रथम संस्करण, १९३६
द्वितीय संस्करण, १९४२
तृतीय संस्करण, १९४४
चतुर्थ संस्करण १९४५
पञ्चम संस्करण, १९४६

मूल्य
डेढ़ रुपया।

मुद्रक—श्रीपतराय, सरस्वती प्रेस, बनारस.

[१]

'जाती हूँ माँ ?'

'भोजन कर लिया ?'—प्रतिमा ने पूछा।

'कबसे माँग रही हूँ, महराज सुनता ही नहीं !'

'वह क्या जानता था कि तू आज सबेरे जायगी। जल्दी क्यों जा रही है ?'

'छोटे क्लासों में आज प्राइज़ बँटेगा। मुझे कमरे सजाने हैं।'

'तो भोजन तैयार करने को उससे कहा था ?'

'नहीं।'

'तब उसे स्वप्न हो जाता क्या ? अच्छा ठहर। पाँच मिनट में खाने को लाती हूँ।'

'नहीं, देर हो जायगी।'

'अभी मोटर भी तो फाटक पर नहीं आई, यों ही ज़िद करके खड़ी रहेगी, और खाना न खायगी। कई बार कहा कजरी, बात-बात पर चिढ़ाना बुरा होता है।'

'क्या है ? कजरी से क्यों नाराज़ हो रही हो ?'—बैरिस्टर वारीन घोष स्त्री और कन्या के बीच में आकर खड़े हो गये।

'बिना समझे-बूझे हमारे बीच में बोलने की ज़रूरत ?'—प्रतिमा झुँझला पड़ी।

'आखिर उस पर क्यों नाराज़ हो रही थीं ?'

'यदि कहूँ कि उसे समझाती थी ?'

'नहीं, मैं नहीं चाहता कि उससे कोई भी कुछ कहे।'

'तुम तो सदा इसी तरह मेरा अपमान किया करते हो ?'

'मेरा ही कसूर था बाबूजी ; माँ वही समझा रही थीं।'

'महराज, यहाँ आओ। तुमने वक्त पर भोजन क्यों नहीं बनाया ?'—अपना कसूर समझते ही वारीन पराजय की लज्जा से झुँझला पड़े।

'सबेरे रसोई के लिए तो मुझसे किसी ने कहा न था, अब रसोई तैयार है।'

'उल्टे जवाब देता है ?'—वारीन महराज की ओर झपटे।

क्रोधी-स्वभाव पति को प्रतिमा भली-भाँति पहचानती थी। रोककर उसने

कहा—हटो, बाहर जाओ, यह क्या करते हो ? और महराज, तुम भी जाओ, थाली परोसो ।

वारीन को बाहर भेजकर वह कजरी के पास खड़ी हो गई, और बोली—अच्छी तरह खाओ बेटी ।

'भूख नहीं है माँ ।'

'है, भूख है । आ, मैं खिला दूँ । अरी रोती क्यों है ?'—कजरी के आर्द्र नेत्रों ने माता को व्याकुल कर दिया ।

'मुझे माफ़ करो माँ, मेरे लिए आज तुम्हें कितना अपमान सहना पड़ा ।'—कजरी व्याकुल हो रही थी । माता ने सिर नवा लिया ।

'क्षमा न करोगी माँ ?'

'बच्चों पर नाराज़ होने से क्या माँ भी व्यथा नहीं पाती बेटी ? फिर तुझ पर तो नाराज़ हुई ही नहीं ।'

'आज तुम असन्तुष्ट हो ?'

'नहीं, वह व्यथा थी । अपनी अकेली बेटी कजरी को मैं इस तरह देखना नहीं चाहती ।'

'अच्छा, अबसे देखना तुम, जैसी चाहती हो, वैसी ही बन जाऊँगी, निराश न होओ ।'

'नहीं, मन में जब सच्ची शक्ति हो, तब हताश होना कैसा ?'

'मेरे लिए तुम कितना सहती हो माँ ! बाबूजी मुझे इस रीति से शिक्षा देना नहीं चाहते । है न ?'

'दुनिया में सभी के मत और सिद्धान्त एक-से नहीं होते । मैं जिसे अपनाती हूँ, दूसरे उसी को दूर हटाते हैं । तब तुम्हारे पिता को दोष देना व्यर्थ है ।'

'बाबूजी जिस रीति से शिक्षा देना चाहते हैं, क्या वह ठीक नहीं है ?'

'अभी कह चुकी न, कि सबके मत एक-से नहीं हो सकते । उनकी इच्छा है कि इंग्लिश क़ायदे से सभी के साथ स्वतन्त्रता से मिलो । हँसी-खेल, आनन्द, स्वार्थ आदि को ही वृहत् रूप से देखो, पहचानो; दूसरों के दुःख, दर्द, कष्ट को तुच्छ समझो ; अपनी कमी, अभाव, प्रयोजन को आदर्श मानो और लज्जा-शर्म छोड़कर

बच्चों के हाथ का खिलौना याने खेलने की गुड़िया बनी रहो ; किन्तु बचपन से तुम जानती हो, मेरी रुचि दूसरी है। अच्छा, आज इन बातों को जाने दो, अब कालेज जाओ।'

'न जाऊँगी।'

'जाओ कजरी !'

'नहीं माँ !'

'वे तुम्हें काम सौंपे निश्चिन्त बैठी हैं। न जाओगी तो कैसे काम चलेगा ?'

'कोई दूसरी कर लेगी।'

'छिः कजरी, कैसा ही छोटा काम क्यों न हो, उसकी अवहेलना न करनी चाहिए। छोटी-छोटी बातों ही से हमारा स्वभाव बनता है। तुम जब बड़ी होओगी, लड़कों से घर भर जायगा, तब कितने बड़े कर्तव्य सामने आयेंगे। आज यदि छोटे की अवहेलना करोगी, तो क्रमशः अवहेलना करने का अभ्यास-सा हो जायगा। उस स्थिति में उचित कर्तव्यों की भी अवहेलना हो जाना स्वाभाविक है। ऐसी ज़िन्दगी में सार्थकता नहीं है। जानवर के ऐसे जीवन से मैं घृणा करती हूँ। आदमी के वचन का जो मोल है, वह सदा याद रखना है रानी !'

'माँ .....'

'अब जाओ, देर हो रही है।'

जब तक मोटर कजरी को लेकर फाटक के बाहर न हुई, तब तक प्रतिमा बाहर के दालान में खड़ी रही, प्रति-दिन की तरह।

वह बैठक में गई—नहाने का पानी तैयार है, उठो।

'महराज की बनाई रसोई न खाऊँगा।'—दीवार की ओर मुँह फेरते हुए वारीन ने उत्तर दिया।

'और सुनो...'—वारीन फिर बोले।

प्रतिमा रुकी।

'अबसे बावर्ची रहेगा, महराज नहीं। वे लोग टाइम के माफिक काम करना जानते हैं।'

प्रतिमा का मुँह कठोर हो गया। द्वार तक जाते-जाते उसने सुना—'समझ ?

अबसे मेरी ही ज़िद रहेगी।' यह केवल आघात ही नहीं ; वरन् वज्र से कठोर निर्मम शब्द थे, जिन शब्दों से वे पत्नी पर जय पाना चाहते थे। पत्नी-हृदय के दुर्बल अंश से वे भली भाँति परिचित थे। पहले कई बार बावर्ची रखने की चेष्टा हो चुकी थी। प्रतिमा न तो आचारनिष्ठ जाति की नारी थी और न छुआछूत ही मानती थी। स्वामी के साथ पार्टियों में मेज़ पर खाया करती थी ; परन्तु पति की विधवा बहन के लिए उसे कई बातों को मानना पड़ता था, वे कभी-कभी इसके पास आकर रहती थीं। ऐसे अनाचार में उनका आना सम्भव न था, तब वह कैसे बावर्ची रख लेती ?

बहुत दिन पहले की बात है, पाँच-छः साल विलायत में रहकर और वहाँ की रीति-नीति में अभ्यस्त होकर जब वारीन देश लौटे, तब इनके माता-पिता इस लोक से बिदा हो चुके थे। केवल विधवा बहन बाकी थी। भाई की शादी के लिए बहन की अधीरता स्वाभाविक थी ; पर भाई का कहना था—देश की लड़की असभ्य होती हैं, वे वहीं लौटकर विवाह करेंगे।

वारीन और प्रतिमा के पितृ-भवन एक ही ग्राम में थे। कालेज की छुट्टी होने पर प्रतिमा घर लौटी। किसी बहाने बहन ने उसे भाई के सामने किया। रूप देखकर वारीन मुग्ध हुए। उसी महीने में विवाह हो गया। वारीन ने सोचा था—बेथून में बड़ी सुन्दरी लड़की मनोनीत ही होगी ; किन्तु सोहागरात में पत्नी की अति लज्जा देखकर उन्हें अपनी भूल पर अनुताप करना पड़ा। पति-पत्नी के मतामत में ज़रा-सा भी मेल न था। बाहर के आवरण से मुग्ध होकर वे भयानक भूल कर बैठे थे। फिर भी सोचा—पुरुष के हाथ की कठपुतली, एक तुच्छ नारी को अपनी आज्ञा-कारिणी कर लेना सहज बात है। स्त्री को पाश्चात्य आदर्श में शिक्षा देने लगे और यह देखकर संतुष्ट हुए कि तर्क किये बिना ही वह उनके दिखाये हुए पथ पर चलने लगी, परन्तु यह बात अधिक दिन न रही। इस स्वाधीनता के युग में जिस दिन उन्हीं के अन्तरंग मित्र क्लब में ताश खेलते समय अपनी सर्वग्रासी दृष्टि से प्रतिमा को निगलते हुए, चाँदनी रात की सुन्दर ज्योत्स्ना उपभोग करने की इच्छा से उसका संग माँग बैठे, उस दिन प्रतिमा का चित्त विमुख हुआ। सहज भाव से अपनी अनिच्छा प्रकट करती हुई वह दूसरी टेबल पर से स्वामी को उठाकर घर लौटी। तबसे उसने क्लब का जाना छोड़ दिया, वारीन सिर पटकते रह गये।

उन्नीस-बीस साल की चेष्टा में असफल होकर वे ही स्त्री के मतावलम्बी हो जाते थे ; और शान्त, अल्पभाषिणी पत्नी धीरे-धीरे उनके हृदय की सम्पूर्ण अधिकारिणी बन बैठी थी, यह बात वारीन न समझते थे, ऐसा नहीं, किन्तु उस दृढ़ खिंचाव, नीरव आकर्षण को वे रोक न सकते थे। उस नारी ने पति के प्रति क्रोध, स्वार्थ आदि भी घटा दिये थे ; पर सम्पूर्ण कृतकार्य न हो सकी थी। कहते हैं—मरने के दिन तक अभ्यास थोड़ा-बहुत निदर्शन देने में कृपणता नहीं करता। शायद इसी कारण समय-समय पर वारीन का क्रोध प्रकट हो जाता था।

[२]

गर्मी के दिन थे। हलके, नीले रंग के ग़लीचे को अबीर से रँगते हुए सूर्य भगवान् अस्ताचल की ओर चल चुके थे। सदा की भाँति लोग घर से बाहर निकलकर काम-काज में जुटने लगे थे। रास्ते से नाना प्रकार की धीमी और तेज़ आवाज़ें—'अवाक् जलपान', 'कुल्फी मलाई' आदि के साथ—लारी, ट्राम, टैक्सियों के मिश्रित रव से एक विचित्र ध्वनि उठ रही थी। ऐसे ही समय मित्र साहब के बड़े फाटक पर मोटरें आतीं और लोगों को उतारती हुई लौट जाती थीं। द्वार पर सफ़ेद पगड़ी बाँधे दरवान अगवानी के लिए खड़ा था।

दुमंज़िले सफ़ेद मकान से लगा हुआ मनोहर पुष्प-उद्यान था। सामने के बरामदे में कोच और कुर्सियों पर बैठे हुए स्त्री-पुरुष, बगीचे के टेनिस-ग्राउण्ड में खेलते हुए नर-नारियों के खेल देखते कभी तालियाँ बजाते और कभी शरबत पीते। संगमरमर की गोल मेज़ पर रखी हुई बरफ़, लेमनेड से भरी काँच की ग्लासें असह्य गर्मी से पसीने हो रही थीं। मनुष्य-शरीर को शीतलता और उष्णता दोनों आवश्यक हैं, स्वास्थ्य के लिए उपयोगी हैं, सम्भवतः इसी विचार से बरफ की ठण्डक को दबाने के लिए सिगरेटों का व्यवहार भी होता जाता था। कई दर्शक दालान की सीढ़ियों पर खड़े रुमाल हिलाकर हर्ष प्रकट कर रहे थे। बगीचे में लोहे की बेंचों पर भी लोग बैठे थे।

छः कन्याएँ—मनिका, रेनुका, अनुका, अशोका, बेनुका—और विधवा भगिनी तथा भगिनी-पुत्र निखिल एवं पत्नी नीरोजा को मिलाकर वीरेन का परिवार छोटा न था। जब कालेज की शिक्षा समाप्त कर नीरेन मित्र एटर्नी होकर विपुल धन के स्वामी

हुए, तब उनके नाम के पहले यदि कोई 'बाबू' शब्द जोड़ देता, तो आपे से बाहर हो जाते थे। भवानीपुरवाला यह मकान इन्हींका था। बड़ी लड़की मनिका कालेज में पढ़ती थी, उससे छोटी बहनें स्कूलों में।

बग़ीचे में लोहे की बेंच पर पत्नी के साथ बैठे मित्र साहब खेल देख रहे थे, और बेटी की प्रशंसा करते हुए फूले न समाते थे।

थकावट मिटाने के लिए मनिका एक बेंच पर बैठ गई।

निखिल विनय से बहन का परिचय कराता हुआ बोला—मनि, ये मेरे मित्र विनय बोस हैं, और यह मेरी बहन मनिका देवी।

'गुड इवनिग मिस मिटर'—मनि का कर-कम्पन करते हुए विनय ने कहा।

'लण्डन में आप कितने दिन थे?' मनि ने प्रश्न किया।

'बस, तीन ही साल तो था। सुना है कि आप भी जानेवाली हैं?'

'विचार तो है, केवल बाबूजी की अनुमति की देर है।'

'डेम मत, यदि आपकी इच्छा सच्ची है; तब कोई भी नहीं रोक सकता, यह मैं दावे के साथ कहता हूँ।'

'यह बात ठीक है।'

'सच तो यह है मिस मिटर, लण्डन न जाने से जीवन का एक हिस्सा ही खाली रह जाता है। जब वहाँ था, तब यही सोचा करता था कि हमारे देश की स्त्रियाँ यदि कुछ दिन यहाँ आकर इनके आदर्श, एटिकेट (व्यवहार) आदि में अभ्यस्त हो जावें, तो भारतवासियों में किसी तरह के अभाव ही न रहें। उस हैपी-लाइफ (आनन्द का जीवन) का अनुमान क्या आप-जैसी नारी भी नहीं कर सकती?'

कुछ कहते-कहते मनि रुकी, निखिल के सरल उच्च हास्य से लोग चौंक पड़े।

'बस भी करो भाई, हमारे देश की माँ-बहनों के सिर में पाश्चात्य आदर्श ठूस-कर उन्हें पागल मत करो।'

'यह तुम क्या कहते हो भैया? तुम्हारे ऐसे करोड़ों को वह देश जीवनभर शिक्षा देने का दावा रखता है।

'क्या सचमुच? यह तो कह, कि तू जायगी कब?'

'कुछ छिपकर जाऊँगी नहीं, मालूम हो ही जायगा।'

'पर माता-पिता के मतामत को 'डैम केयर' करने से विशेष सुविधा होगी, ऐसा मैं नहीं समझता।'

'उनकी सभी बातें माननी पड़ेंगी, यह अन्याय नहीं अत्याचार है।'—मनिका उत्तेजित हो रही थी।

'अरे, चिढ़ती क्यों है? क्या मैं कहता हूँ कि तू अत्याचार को सह ले या मान ले? मेरा तो प्रश्न केवल इतना ही है कि विलायत जाने के लिए रुपये की भी आवश्यकता पड़ती है, या वे भी वहाँ की जलवायु के गुण से अपने-आप हाथ में आ जाते हैं? कहता था, हमें अन्त तक उनकी इच्छा से चलना ही पड़ता है।'

'क्या अर्थ ही सबसे बड़ा प्रश्न है? आदमी की सदिच्छा की क्या कोई वेल्यू (मूल्य) ही नहीं है? वे हेल्प न करें, दूसरा कोई कर सकता है।'

'वह कौन है?'

'मिस मिटर जैसी विदुषी को हेल्प करना, एक सौभाग्य है, गर्व है, आनन्द है और है अनमोल सन्तोष।'

'वह सौभाग्यवान् व्यक्ति कौन है, विनय?'—निखिल ने अपना प्रश्न दोहराया।

'भैया के प्रश्न का उत्तर दीजिए, मिस्टर बोस?' - मनिका अधीर हो रही थी।

'कहता था, वह वांछित अधिकार यदि आप मुझे दें।'

'तुम! तुम उसके विलायत का खर्च चला सकोगे?'

दोनों हाथों से पेट दबाकर निखिल हँसी के कारण काँपने लगा।

मनिका चिढ़ी—चलिए मिस्टर बोस, बाबूजी से परिचय करा दूँ।

वे दोनों चल पड़े।

'भैया की बातों का कुछ विचार न करना। वे न-जाने कैसे हैं।'

'नहीं, नहीं, इन्हें जानता हूँ।'

'आपकी दी हुई फ्रेण्डशिप मैं आनन्द के साथ स्वीकार करती हूँ।'

'मेरा आपसे यह पहला ही परिचय है; किन्तु मुझे ऐसा जान पड़ता है कि जन्म-जन्मान्तर से आप मेरी परिचिता हैं, फिर भी प्रथम परिचय में इतना बड़ा अधिकार माँग बैठना कहीं आउट आफ ऐटिकेट (अभद्र बर्ताव) तो न होगा? पर सच तो यह है मिस मिटर, जब किसी चीज़ पर आग्रह होता है, जब मुझे कोई वस्तु

भली लगती है, तब उसके लिए कोई भी बात उठा नहीं रखता ; जिस काम के करने की तबीयत चाहती है, उसे किये बिना रुकता नहीं। यह बात याद ही नहीं रहती कि मेरे व्यवहार भद्रता के बाहर जा रहे हैं। माफ़ करना मिस मिटर।'

'क्यों संकोच करते हैं मिस्टर बोस। कह नहीं सकती कि आज मुझे कैसा आनन्द हो रहा है। आप जैसे उदार फ्रेण्ड मेरे एक भी नहीं है।'

'आपको हज़ारों बार धन्यवाद।'

बैठकखाने के द्वार के निकट आकर मनि ने विनय का हाथ छोड़ दिया।

'देखो बाबूजी, किसे लाई हूँ?'

मनिका को आदर कर नीरेन ने हाथ बढ़ाया--आइए मिस्टर बोस। मनि, चाय का बन्दोबस्त करो।

'माँ, मैं टायर्ड (थकी) हूँ, आया से कहो।'—मनि माता की गोद में बैठ गई।

'तू बैठ। निखिल, जाओ तो बेटा, दीदी से कहो कि अलमारी खोल दें। और सुनो, आया जब तक चाय का सामान न निकाल ले, तब तक वे वहीं खड़ी रहें, ऐसा कह देना।'

बगीचे में टहलते हुए सभी स्त्री-पुरुष कमरे में आकर बैठ गये थे।

सरोज ने नीरेन से पूछा—इन्हें पहचान न सका, इन्हें देखकर मिस मिटर बहुत खुश जान पड़ती हैं। ये हैं कौन?

'आज के पहले विनय बोस को देखा ही न था। निखिल के फ्रेण्ड हैं। मनि की बात जाने दो। उसका स्वभाव ही ऐसा सरल है। जिसे वह पसन्द करती है, वह चाहती है कि सभी उसे पसन्द करें, सभी उसे चाहें।'

निखिल को लौटने में देर लगी, कारण, उसकी माँ सरस्वती संध्या कर रही थीं, तब उसी को खड़े रहकर माता का कर्तव्य सम्पादन करना पड़ा।

'तुम इसे कहाँ से लाये निखिल?'—मृदु कण्ठ से नीरेन ने पूछा।

'मेरा मित्र है। विलायत में कुछ दिनों तक हम दोनों साथ थे।'

'इतने दिनों तक यह कहाँ था?'

'विलायत से लौटे इसे अभी पन्द्रह दिन भी नहीं हुए।'

'इतने दिनों तक ये वहाँ क्या करते थे ?'—कुछ सोचकर सरोज ने पूछा।

'पहली बार वह फेल हो गया था ; परन्तु यह तो कहो, उस बेचारे के पीछे तुम सब हाथ धोकर क्यों पड़े हो ?'

'अरे भाई, पूछा तो क्या हो गया ? लो, अब पूछूँगा ही नहीं।'

नीरेन ने कहा—स्मार्ट छोकरा मालूम पड़ता है। अप-टू-डेट है, देखने में भी सुन्दर। क्या पढ़ने गया था ? बैरिस्टर है ? घर में कौन है ? बाप का कुछ पैसा-वैसा भी है ?

'विनय के पिता हैं ; पर कभी लड़के की खबर नहीं लेते। सहायता भी नहीं करते। पिता के सिवा और कोई नहीं है।'

'छोकरा इन्टेलीजेण्ट-सा (बुद्धिमान) दीखता है। उन्नति ज़रूर करेगा। तुम क्या विचारते हो ?'

'शायद करे।'—एक अनजान के विषय में मामा का इस तरह अनुसन्धान करने का कारण बहुत सोचने पर भी निखिल की समझ में न आया। वह आश्चर्य से उनका मुँह निहारने लगा।

'शायद नहीं, निखिल, तुम देखना वह ज़रूर उन्नति करेगा।'

'विलायत रहते समय यह लिखने-पढ़ने में ध्यान नहीं देता था।'

'देखना चाहिए, अब क्या करता है। यह तो कहो, विलायत में जो रुपये तुमने क़र्ज़ दिये थे, वे मिले ?'

'नहीं।'

'क्यों ?'

'रुपए विनय ने लिये थे।'

'इसी विनय ने ?'

'जी हाँ।'

रात के दस के लगभग आगन्तुकों ने उस दिन के लिए बिदा ली।

[३]

बार-बार घण्टी की टनटनाहट से वारीन ने सिर उठाया। द्वार पर नीरेन, मित्र

की पत्नी नीरोजा और मनिका खड़ी थीं। वारीन उठकर खड़े हो गये—आइए, आइए, बाँय यहाँ आओ।

'आप बैठिए मिस्टर बोस, हम बैठती हैं। प्रतिमा घर में है न?'

'घर ही में है। बाँय उनको बुला ला।'

कुछ देर के बाद लौटकर नौकर ने कहा कि माँजी उन सबों को अन्दर बुला रही हैं।

'आप बैठिए। मैं उन्हें बुलाता हूँ।'

'आप कष्ट न कीजिए काका। माँ, चलो।'

'किस कमरे में जाना है; बतला दे।'—नीरजा ने नौकर से कहा।

'माँजी रसोई बना रही हैं। चलिए, वहीं लिये चलता हूँ।'

'सर्वनाश ऐसी गर्मी में रसोई-घर! और यहीं हमें बैठना भी होगा!' ऐसी बातों का विचार करती हुई विस्फारित नेत्रों से नौकर की तरफ़ देखती नीरोजा पीछे हटी।

'फिर शैतानी, जा उन्हें बुला दे।'—रुष्ट स्वर में वारीन नौकर से बोले।

'जी माँ···।'

'फिर बातें बनाता है।'

'मनि आ, देखें क्या बात है?'—अदम्य कौतूहल से नीरोजा चल पड़ी।

पागलपन इसे ही कहते हैं। आज शायद रोटी बनाने का शौक हुआ है।'—वारीन उन्हें रोकना चाहते थे।

'ऐसी गर्मी में?'—नीरोजा रुकी।

'आप लोगों की वह एक कहावत है न—अपने हाथ की बनी रसोई पति को न खिलाने से स्वर्गलाभ नहीं होता। चाहे यह बात झूठ हो, फिर भी इससे हमें लाभ के सिवा हानि नहीं। महाराज के हाथ की रसोई – ईश्वर बचावे, इससे कभी-कभी मुँह का स्वाद तो बदल जाता है। है न ठीक?'

'चूल्हे में जाय वह स्वर्ग। ऐसी गर्मी में रोटी बनाना।'

'उस मैले रसोई-घर में, धुएँ में बैठना, कपड़ों पर हल्दी का दाग, हाथों में लह-

सुन-प्याज की दुर्गन्ध, बाप-रे बाप ! मैं तो सोच ही नहीं सकती कि शिक्षित स्त्रियाँ कैसे रोटी बनाती हैं।' घृणा से मनिका सिहर उठी।

तरुणी की घृणा देखकर बारीन ने दूसरी ओर मुँह फेर लिया। मन-ही-मन वे प्रतिमा पर चिढ़ने लगे। महराज को छुड़ाने के बाद से वही रोटी बना रही है। बावर्ची तो रखा नहीं, उल्टे शपथ कर बैठी कि रसोइया अब रखेंगे ही नहीं ! छोटी-सी बात थी, उस दिन बारीन क्रोध में कह उठे थे—यदि बावर्ची नहीं रखना है, ऐसे ही तुम छुआछूत मानती हो, तब अपने हाथ से क्यों नहीं बनाती ? उधर मेम साहबी ठीक है। असली बात, महराज मैं न रखूँगा। वे टाइम की वेल्यू (मूल्य) नहीं जानते।

उत्तर में पत्नी कुछ भी न बोली थी। इसके बाद महराज रखने की शतचेष्टा व्यर्थ होकर उसका यह छोटा-सा उत्तर अटल रह गया था—मैं ही रोटी बनाऊँगी।

बहुत अनुनय-विनय के बाद जब प्रतिमा ने कहा कि वह सौगन्ध कर बैठी है, रसोइया न रखेगी, तब बारीन केवल क्रुद्ध ही नहीं वरन् डर भी गये ; क्योंकि बीस-बाईस वर्ष की अभिज्ञता से वे प्रतिमा की सौगन्ध से भली-भाँति जानकार थे; किन्तु स्त्री यदि रसोई बनाने में लगी रहेगी, तब मान-सम्मान कैसे रह सकेगा ? शिक्षित समाज में उस निकृष्ट कार्य के लिए स्थान नहीं है, वह तो जीवन का एक कलंक, असभ्यता का प्रधान चिह्न है ! अपने ऊपर भी वे कम असन्तुष्ट न हुए। स्वयं उन्होंने तो प्रतिमा को सिर चढ़ाया है, 'स्त्री-पुरुष के समान अधिकार' के पक्षपाती के रूप में अपने-आपको प्रकाश किया करते हैं, अब पीछे लौटने से कैसे चलेगा ? परन्तु नहीं, प्रतिमा बहुत बढ़ गई है। अब उन्हें कठोर होना चाहिए। यों ही सोचते-विचारते वह अन्दर चले।

रसोई-घर के द्वार के सामने आरामकुर्सी पर लेटी हुई नीरोजा प्रतिमा की रसोई देख रही थी, मनि खड़ी थी।

कृत्रिम हँसी के साथ बारीन ने कहा—देखो तो सही, कैसा ऊटपटाँग शौक है ? गर्मी में खुद कष्ट सहती हो और साथ-ही-साथ मिसेज मिटर को भी हैरान कर रही हो !

'दीदी, तुम्हें कष्ट हो रहा है क्या ?'—प्रतिमा ने पूछा।

'होता ही है।'—उत्तर दिया वारीन ने।

'बाबूजी, मैं तो माँ को कब से बाहर जाने को कह रही थी, जब वह किसी की सुने तब न। क्या कल की रसोई खराब बनी थी?'

'तुम दोनों माँ-बेटी पागल हो, चलो, चलो।'—शंकित हो रहे थे।

'क्या कहती हो प्रतिमा, वह ज़रा-सी लड़की रोटी बनायेगी?'

'डरो मत दीदी, कोई पंद्रह दिन से शाम की रसोई यही बनाती है। बहन, उमर तो हुई है। लड़की होकर जब जन्मी है, तब ससुराल भी एक दिन जाना है।'

'सर्वनाश! ऐसी गर्मी में तुम रसोई बनाती हो? महराज कहाँ गया।' 'वह छुट्टी लेकर गया होगा!'—वारीन उस प्रसंग को वहीं रोकना चाहते थे।

'ये नहीं जानते, उसे मैंने जवाब दे दिया है।'

'क्यों?'

'लड़की को घर-गृहस्थी भी सीखनी है, इसीसे उसे निकाल दिया।'

'यदि यही इच्छा थी, तब उसे इतना क्यों पढ़ाया।'

'लिखना पढ़ना सीखने से क्या घर-गृहस्थी बहा देनी पड़ती है दीदी?'

'पर रोटी बनाने से ही गृहस्थी बनी रहेगी, यह किस अर्थ-शास्त्र में लिखा है? मैं किसी भी दिन भंडार, रसोई-घर में झाँकती नहीं, क्या तुम कहना चाहती हो—मेरी गृहस्थी बह गई?'

गर्वित दृष्टि से वारीन की ओर एक बार देखकर नीरोजा ने कहा—मैंने एजूकेशन (शिक्षा) पाई और लड़कियों को देती जाती हूँ, वह क्या इन्हीं सब नॉनसेन्स (व्यर्थ) कामों के लिए?

कई क्षण के बाद प्रतिमा ने जवाब दिया—तुम कुछ सोचना नहीं बहन। यह नहीं कहती कि मैं जो सोचती हूँ—करती हूँ, वही सब ठीक है, बाकी सब ग़लत है। नहीं, ऐसा नहीं; किन्तु मेरे विचार से गृहस्थी के कामों के बिना नारी का जीवन अपूर्ण रह जाता है। नारी का वास्तविक सौन्दर्य इसी में है। यहाँ पर वह अन्नपूर्णा है। स्त्री-जीवन की सार्थकता—इसी छोटे-से रसोई-घर के अन्दर से स्वामी, पुत्र, परिजनों को सन्तोषपूर्वक मिलाने में वह प्राप्त होती है। वह शक्ति की अंश शक्ति-रूपिणी है, भीतर-बाहर के काम समान भाव से चलायेगी, तभी न उसके नारीत्व का

पूर्ण-विकास होगा। केवल मोटर में चढ़कर थिएटर-सिनेमा देखने में तथा लोगों के सामने अपने को डेलिकेट (कोमल) प्रकट करने में सार्थकता नहीं है और न अपने-आपको विदुषी समझकर नर-नारी के समान अधिकार के लिए व्यर्थ तर्क करने ही में है दीदी।

'तब मेरा नारीत्व एक परिहास की वस्तु है, यही कहना चाहती हो न?'—नीरोजा का मुँह लाल हो रहा था।

'तुहारा दिमाग़ बिगड़ गया है, प्रतिमा। क्या बकती हो? चलिए, मिसेज़ मिटर बाहर हैं।'

'व्यक्तिगत अपनी बात क्यों सोचती हो बहन? तुम्हारी नन्द हैं, वे ही घर के धंधे देखा करती हैं। मैं तो केवल अपनी अभिरुचि बता रही हूँ। मेरे विचार से लड़कियाँ लिखना-पढ़ना सीखें ज़रूर; पर गृहस्थी के धन्धों को छोड़कर नहीं!'—तरकारी ढाँककर धीरे से प्रतिमा बोली।

'मिस्टर बोस, आप व्यर्थ इतना खर्च करके लड़की को एजूकेशन देते हैं।'—नीरोजा के ये शब्द परिहास से भरे हुए थे।

पति की तेवरी देखकर प्रतिमा मुसकराई—शिक्षा का अर्थ ही भूल समझ रही हो, दीदी।

'याने?'

'मैं न कहूँ!'

उच्च हास्य के शब्द से सबों की दृष्टि निखिल पर पड़ी।

'मामी, किससे तर्क कर रही हो? छोटी मामी से? अरे, उनमें तो कई तरह के पागलपन भरे हैं, सब बातें तुम नहीं जानतीं। मैं कहता हूँ, सुनो—रात में नौ से दस तक रामायण, गीता आदि लड़की को पढ़ाती हैं।'

नीरोजा की घृणा भरी दृष्टि के आगे वारीन संकुचित हुए, पत्नी से पूछा—क्या यह सच है?

'और आप जानते न थे मिस्टर घोष?'—यह प्रश्न नीरोजा का था।

'किन्तु आपमें से प्रत्येक ऐसा अद्भुत मुँह बना रहा है कि बिना हँसे रहा नहीं जाता। क्या यह भी कोई भयानक अपराध है?—आश्चर्य के साथ निखिल ने कहा।

'नहीं-नहीं, अपराध की बात नहीं है। तुम्हारी मामी की यह करतूत मैं न जानता था और न कजरी ही ने कभी कुछ कहा था।'

'तुमने कभी पूछा भी तो न था बाबूजी, इसके सिवा मैं तो यही समझती हूँ, माँ जो कुछ हमें सिखाती है या सिखायेंगी, न तो उसमें ग़लती है और न उस पर समालोचना ही की गुँजाइश रह सकती है।'

'मैं यह नहीं कहता। फिर भी नित्य घण्टे-भर समय नष्ट करना ठीक नहीं।'

'सच ही तुम पागल हो प्रतिमा; पर यह कहना अनुचित न होगा मिस्टर घोष कि इस तरह इन्हें स्वतन्त्र होने देना आपके लिए ठीक नहीं है'—नीरोजा के नयन परिहास की हँसी से नाच रहे थे।

'बाहर चलो! मैंने हज़ार बार कहा – इस मीन वर्क (नीच-कार्य) में न लगी रहा करो। बे-काम का काम।' वारीन आपे से बाहर हो रहे थे।

'रसोई-घर में तुम्हें किसने बुलाया? जाओ, बाहर जाओ। दीदी, अवकाश के समय यदि मैं अपनी बेटी को धर्म-शिक्षा दूँ, तो इससे किसीको कुछ हानि पहुँचेगी, ऐसा नहीं समझती।' पत्नी के ये अपमान-जनक शब्द शिक्षाभिमानी मित्र-पत्नी के अन्तर में कैसी हलचल मचा देंगे, यह विचारकर वारीन स्तब्ध हुए। क्रोध तथा अपमान से नीरोजा काँप उठी, फिर भी उसकी शिक्षा ने उसे अधीर होने से रोका।

'नुकसान किसीका क्या होगा? परन्तु जो नारी सभ्य-समाज में मिलने की स्पर्द्धा रखती है, उसे ऐसे कुसंस्कारों को छोड़ना ही ज़रूरी बात है। शिक्षित-समाज में इन बातों के लिए जगह नहीं है प्रतिमा। यह तुम्हारे गाँव में चल सकती है।'

'ऐसा भी तो हो सकता है दीदी, कि जिसे तुम शिक्षा कहती हो, उसे मैं शिक्षा नहीं समझती। शायद, शायद इसमें हम दोनों भी भूल कर रही हैं, नहीं एक की भूल होगी।'

'एजूकेशन के बारे में तुम क्या कहना चाहती हो?'

'मैं कुछ भी कहना नहीं चाहती। केवल अपनी बेटी को कुछ सिखाना चाहती हूँ। बस, इतना ही तो है।'

'तुम जिसे शिक्षा समझती हो, क्या वह मैं सुन नहीं सकती बहन?'

'बड़ी बहन हो, क्यों न सुनोगी ? मैं चाहती हूँ—शिल्प, विज्ञान, घर-गृहस्थी, शरीर-पालन, संगीत आदि थोड़ा-बहुत उसे समझा दूँ। मेरा ज्ञान ही कितना है दीदी ? फिर भी चेष्टा करना है। और साथ ही में धर्म, जो कि स्त्रियों के लिए विशेषतः वर्तमान युग में परम आवश्यक है। भयानक स्थिति में भी जो उसे शुद्ध सुन्दरता के साथ जीवित रख सकता है, माता के आसन को गन्दे कीट से बचा सकता है, एवं प्रलोभन से उसे खींच लाने की स्पर्द्धा भी रखता है, वही सुन्दर महान उदार धर्म जो कि हमारा जीवन है। हाँ, वही पावन धर्म उसे सिखाना, केवल सिखाना ही नहीं, असाध्य व्याधि की भाँति उसके हरएक रोम में भर देना। हम माँ हैं, यह काम हमारा ही है, इसलिए बचपन से उसके मन में संक्रामक रोग की तरह धर्म को भर देने की चेष्टा करती हूँ—करूँगी।'

अचानक निखिल प्रतिमा के पैरों पर गिर पड़ा और दूसरे ही क्षण वह बाहर चला गया।

प्रतिमा शर्मा गई—देखो, पागल क्या कर बैठा।

'लो, तुम्हारा लेक्चर सार्थक हुआ।'—आह्लाद के साथ वारीन ने कहा।

'चलो दीदी, बाहर बैठें।'—प्रतिमा ने नीरोजा का हाथ थामा।

'चलो, दो भक्त मिले। अरे, अब तो इनका माथा आकाश पर रहेगा, है न मिसेस मिटर ?'—वारीन हँस रहे थे; परन्तु नीरोजा के नेत्रों पर दृष्टि पड़ते ही उनका उत्साह जाता रहा।

[४]

'कहाँ गई बेटी कजरी ?'—पुकारती हुई सरस्वती वारीन के घर आई।

'आइए दीदी।'

'प्रणाम की जरूरत नहीं; मैं यों ही आशीर्वाद देती हूँ, तू जन्म-भर सौभाग्यवती बनी रहे। कजरी कहाँ गई ? कपड़े मरम्मत हो रहे थे ?'

'हाँ दीदी, धोबी के घर से साबूत कपड़े आते ही नहीं, बटनों का तो पता ही नहीं रहता।'

'करो, यही तो लक्ष्मी के काम हैं।'

'ये बातें उन्हें कहने की ज़रूरत नहीं है दीदी, रोटी बनाना फटे कपड़े मरम्मत

करना, ये सब इन्हें आते हैं। बस, मुझे गजट पढ़के सुनाने का अवसर नहीं रहता। यदि इसे लक्ष्मी कहा जाय, तो अलक्ष्मी होना इससे कई लाख गुना अच्छा है।'—वारीन ने कहा।

'कोई जान-बूझकर झूठ कहे, तब भला मैं क्या करूँ। आप ही पूछिए, रोज घण्टे-भर किसे गजट पढ़कर सुनाती हूँ? रही कपड़े की सिलाई! यदि धोबी नये कपड़े फाड़ दे, फिर उन्हें फेंक दूँ? मुझे क्या, कल से इनके शर्ट, पैण्ट मरम्मत न करूँगी। ऐसे ही पहनकर बाहर जायँगे न?'—मुसकराती हुई प्रतिमा बोली।

'बेकाम का काम करना और लड़की तक से कराना।'

'मैं वह सब न करूँगी, तो कौन करेगा?'

'दर्ज़ी रख लो।'

'चुप भी रहो, ऐसे छोटे कामों के लिए यदि पचास रुपये महीने पर दर्ज़ी रखना पड़ा—'

'अरे भाई, मिसेस मिटर दर्ज़ी हो से कराती हैं।'

'वे कराती हैं, एक तो उन्हें समय नहीं, दूसरे उनकी आर्थिक अवस्था भी अच्छी है; किन्तु हमें भी वही करना है, यह कोई बात नहीं। विशेषतः वक्त भी कटना चाहिए।'

'लड़की को क्यों खींचती हो?'

'उसे वक्त रहता है, वह अपने आप करती है, मैं उसे नहीं बुलाती।'

'बिना बुलाये वह करती है?'

'यदि उसे काम के लिए कहूँ, तो कुछ हानि है?'

वारीन सहम गये। प्रतिमा ने प्रश्न दोहराया—चुप मत रहो। कहो, इसमें कौन-सी हानि है?

'क्या तुम दोनों सदा इसी तरह झगड़ते रहोगे? मिसेज़ मित्रा के आदर्श को सामने मत रखना भैया। सच कहती हूँ वारीन, बहू की लड़कियाँ कभी ससुर-घर न रह सकेंगी। इसके उपरान्त माँ के कर्तव्य जो कि प्रथम व प्रधान हैं, वे ही माँ के कर्तव्य वे किसी दिन भी नहीं कर सकेंगे। जाने दो। रविवार को न्यौता है। कजरी को

उस दिन कालेज जाना नहीं है, उस दिन के लिए कजरी को मुझे दे दे बहू। बुढ़ापे में ज़्यादा काम होता नहीं।'

'तुम ले जाओगी—फिर पूछना कैसा?'—पति-पत्नी बोल उठे।

'बावर्ची कहाँ गया?'

'है; पर ऐसे लोग भी उस दिन आयेंगे, जो छुआछूत मानते हैं। मैं ही बनाऊँगी।'

'बूआ कब आईं?'

'कोई घण्टे-भर से। तू कहाँ थी। अब देर मत करो।'

'मैं तैयार हूँ। जाती हूँ मा।'

'निखिल के आश्रम में तुझे एक बार जाना ही चाहिए, पगली लड़की।' बारीन के शब्द स्नेह से सने हुए थे।

चेतना के पथ में मोटर की गति ह्रास हुई।

'यहाँ फूफाजी रहते थे? तुम क्यों नहीं रहतीं?'

'कैसे रहूँ बेटी!'

'सो क्यों?'

'उनके मृत्यु-समय निखिल छोटा था। नीरेन हमें ले गया। वह छोटा भाई ज़रूर है, फिर भी उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ करना नहीं चाहती। उसी के कहने से निखिल को पढ़ने के लिए विलायत भेजना पड़ा था। वहाँ से लौटने के बाद नीरेन एवं बहू ने कितना ही समझाया, पर उसने एक न मानी। नौकरी से वह घृणा करता है। चेतना के मकान से किरायेदार को निकाल दिया, उसमें सरोज रहने लगा। दोनों ने मिलकर आस-पास के मैदानों में घर बनवाये, तभी से उनमें जुलाहे रहते हैं।'—सरस्वती हँसी।

'फिर क्या हुआ?'

'जो कुछ हो रहा है, वह तो तू देख रही है। नीरेन कहता है, यदि यही करना था, तब विलायत क्यों गया? वह हँसता है, जवाब नहीं देता। कई बार नीरेन ने कहा—यही करो; किन्तु इस रीति से नहीं, कल-पुर्जे, मशीनें मँगवाकर कायदे से काम करो। लड़के को वह पसन्द नहीं। कहता है—ताँत, चरखा अपने देश के प्राण

हैं। क्या-क्या बकता है, मैं समझती नहीं। सरोज को तो खींच ही लिया, तुझे भी खींचना चाहता है!'

'भैया के खादी-आश्रम ने मुझे अपना लिया बूआ! देखती नहीं, यहाँ न आने से रात को नींद नहीं आती।'—लजाकर कजरी ने उत्तर दिया।

लोहे के फाटक पर मोटर खड़ी होते ही कजरी उतर पड़ी।

'जल्दी चलो बूआ, देर हो गई है।'

राज-प्रासाद के समान अट्टालिका के नीचे के बड़े-बड़े कमरों में जुलाहे बुन रहे थे। जिस कमरे में स्त्रियाँ सूत कात रही थीं, वहाँ जाकर कजरी खड़ी हो गई। दरिद्र नर-नारी, असहाय विधवा आदि निखिल के आश्रम में काम करके यथेष्ट वेतन पाते थे।

'उनके सूत का हिसाब मिला ले कजरी!'—निखिल ने कहा।

'भैया देखो, सुभद्रा का सूत कैसा बारीक और सुन्दर है?'

सूत परखते-परखते उत्साह से कजरी चिल्ला पड़ी—'ऐसा सूत आज के पहले किसी ने नहीं काता। इसे कुछ...'

'क्या कहती है बहन? कह।'

'सुभद्रा को उत्साह न दोगे? वह गरीब है।'

'जो देना चाहती है, दे बहन।'

'तुम सब यहाँ आओ, ऐसा सूत जो कातेगी, उसे रोजीना से दूना से वेतन मिलेगा। मैनेजर काका, सुभद्रा को एक रुपया इनाम दे दो।'

मजदूर आनन्दध्वनि कर उठे।

'मैं अब भीतर जाती हूँ बूआ! तुम तब तक गोविन्दजीके मन्दिर में जाओ।'

यह आश्रम से लगी हुई वृहत् अट्टालिका, पुष्प-वाटिका तथा श्यामसुन्दरजी का मन्दिर सरस्वती के पति की सम्पत्ति था। नक़द रुपये अधिक न थे। बहुत दिन पहले की बात है, जिस दिन पितृ-मातृ-हीन सरोज को मित्र के परिचय से निखिल माता के सामने लाया था। सरोज के पिता जज थे। अगाध सम्पत्ति छोड़कर मरे थे।

एम० ए० परीक्षा के बाद दोनों मित्र बिलायत गये एवं देश में लौटकर निखिल ने जब खादी आदि बनाने की इच्छा प्रकट की, तब सरोज भी आनन्द के साथ हिस्सा लेने को तैयार हो गया। सरोज के अर्थ से आश्रम-गृह बने। दोनों के

सम्मिलित आग्रह-परिश्रम से कुछ ही दिनों में उन्नति होने लगी। सरस्वती के मकान की ऊपरी अटारी पर सरोज रहता और नीचे कर्मचारी रहते थे। सरोज को अपने घर रखने की चेष्टा नीरेन ने बहुत की, पर वह रहा नहीं।

सरोज की मोटर पर सरस्वती नित्य यहाँ आती और उनके लिए रसोई की व्यवस्था और ठाकुर-पूजन कर लौट जाती। सुबह तो नहीं; परन्तु सन्ध्या समय कजरी निश्चय आती।

बड़ी कढ़ाइयों में जहाँ रंग बन रहे थे, कजरी वहाँ पहुँची।

'मैनेजर काका, गये वक्त का लाल रंग पक्का नहीं था, अब ठीक से बनवाना।'

'तब मैं यहाँ नहीं था।'

'आज हिसाब न देखूँगी काका, जल्दी जाना है।'

सरस्वती देव-मन्दिर में बैठी फूलों की माला गूँथ रही थी। पुजारी धूप-चन्दन सजाने लगे थे।

कजरी ने पुकारा— बूआ, सरोज भैया के खाने का बन्दोबस्त कर लिया है?

'नहीं।'

'मैं करे देती हूँ, तुम देर न लगाना।'

रसोई-घर में जाकर कजरी ने रसोइया से पूछा—महराज, क्या करते हो? महरी कहाँ गई। बाजार से क्या लाये हो? कटहल? तुम आलू-परवल की तरकारी बना लो।

'अरे, तुम फिर रोटी बनाने बैठ गईं? मेरे लिए तुम्हें बड़ी तकलीफ होती है कजरी!'

'क्या करें, बहन का कष्ट तो भाई समझे ही नहीं।'—कजरी हँस रही थी।

'मैं समझा नहीं।'—सरोज ने कहा।

'कहती हूँ, ज़रा ठहरो, महराज, देखो तो रामदीन कहाँ गया? उससे कहो, बाज़ार का हिसाब दे दे. नहीं फिर सबेरे बूआ को दिक्कत पड़ेगी। मैं कहती थी, यदि भौजी होतीं, तो क्या हर रोज़ मुझे यहाँ दौड़ना पड़ता? अब समझे न?'—उत्तर की आशा से वह हँसती हुई आँखें उठाकर अवाक् हुई।

'यह क्या सरोज भैया, कहीं तबीयत खराब तो नहीं है?'

'नहीं, चाप बन गये? भूख भी ज़ोर से लगी है।'

'क्या चाप की सुवास से भूख लगी ?'

'चाप की सुगन्ध से, या चाप बनानेवाली के हाथ के गुण से, यह कहना ज़रा कठिन है ।'

'अहा ! अच्छा बनाती हूँ न ?'—कजरी लजा गई ।

'सच ही कहता हूँ कजरी !'

'अच्छा-अच्छा, रहने भी दो । देखना, भौजी कितना अच्छा बनायेगी, तब छोटी बहन की याद तक न रहेगी ।'

'शायद ऐसा ही हो',—वह उदास भाव से बोला—दो सन्देश और कटहल के चाप रकाबी पर रखकर कजरी ने कहा—देखा, महराज गया तो गया ही, घर लौटने में देरी होगी ।

'क्या पढ़ने का नुकसान होगा ?'

'नहीं ।'

'फिर ?'

'माँ अकेली रसोई बनाती होंगी ।'

'क्या अब मौसी ही बनाया करती हैं ?'

'हाँ, खा लो सरोज भैया ! ठंढे हो जायँगे ।'

निखिल ने पुकारा—क्या करती है ? अरे, यहाँ तो गरम-गरम चाय बन रहे हैं। और तू अकेला ही सब खा रहा है सरोज ?

सरोज के हाथ से चाप छीनकर निखिल ने अपने मुँह में भर लिया । 'बाप रे, यह तो गरम है, कजरिया ने जीभ जला दी ।'

'अच्छा हुआ, यह दंड है जबरन छीनने का ।'

कजरी हँसने लगी ।

'और दें भैया !'

'नहीं, ऐसा खराब बना है, एक से ज़्यादा खाया नहीं जाता ।'—मुँह बनाकर निखिल बोला ।

'ऊपर से झूठ भी बोलना । सरोज भैया को रात के लिए नहीं बचेगा, ऐसा न कहा, लगे करने बनाने की निन्दा । देखा जायगा; भौजी आकर कैसी रोटी बनाती हैं ?'

सरोज की पीठ पर हाथ रखकर निखिल बोला।

'तब तो दोनों बहुएँ साथ ही लाना है, तैयार हो भाई ? कजरी बहन को बड़ा घमण्ड हुआ है, अच्छा ठहर जा।'

उसके कहने की रीति से कजरी और सरोज हँस पड़े।

[५]

ड्रेसिंग रूम की खुली आलमारी के सामने खड़ी मनिका कपड़े चुन रही थी। हृदय-वीणा के तार अपूर्व झंकार से बजते जाते थे, जिससे दूरागत प्रिय की मोहन वंशी-ध्वनि वह क्षण-क्षण में अनुभव कर रही थी, वंशी की उस सुरीली तान में थी उन्मत्तता, उत्तेजना, और भी था जय का एक प्रबल आग्रह। वंशी-रव निकटतर हुआ। रुद्ध द्वार पर आघात हुआ। मनिका चंचल हुई। सर्वनाश, बनाव-शृङ्गार तो अभी बाक़ी है, अन्त में क्या इसी तरह प्रिय के सामने निकलना पड़ेगा ?

'दीदी, आज क्या टॉयलेट ही करती रहेगी ? दर्वाजा खोलो।'

'अरे ! यह तो रेनु है। अभी देर है।' विरक्ति के साथ मनिका ने कहा।

सब लोग आते ही होंगे। हमें भी कपड़े पहनने हैं।'

'दूसरे कमरे में जाओ।'

'कपड़े सब इसी में हैं।

'दिक मत करो रेनु, जरा ठहरो।'

मन-ही-मन मनि हँसी। पगली रेनु, उसका प्रसाधन भला कौन देखेगा ? सबों पर तो उसी को विजय पाना है, रेनु को नहीं। सेफाली, माधुरी, कजरी, मनोरमा-जैसी सुन्दरियों को वह परवा नहीं करती। मनि की चिन्ता दूसरी ओर पलटी, इस बार यदि सरोज की नाईं — नहीं-नहीं वैसा न होगा। धनवान् सरोज की आशा में माता-पिता बैठे थे, अन्त में अविवेचक सरोज ने उसकी उपेक्षा कर कजरी को फिर चढ़ाया, छिः-छिः, कैसी गन्दी है उसकी रुचि ! मनिका घृणा से संकुचित हुई। वह विचारने लगी और विनय ? विनय की बात याद आते ही मन में आनन्द की लहरें बह चलीं, सुन्दर-दर्शन, श्रीमान् युवक कल्चर्ड (सभ्य) भी हैं। भला हुआ जो सरोज के लिए किसी प्रकार की चेष्टा न की। मन में प्रश्नों की झड़ी-सी लग गई। क्या यह बात सच है ! सरोज के लिए उसने कुछ भी न किया था ? और आज भी चेष्टा नहीं कर रही है ?

'नहीं'—वह ज़ोर के साथ अस्वीकार करने लगी। वक्र हँसी उसके ओंठ पर थिरकने लगी। झूठ, बिलकुल झूठ। वह अपने-आप कह चली—सरोज क्या उसके योग्य है? जो ऐसा करती? किन्तु कजरी! अच्छा क्या है उस लड़की में? वह आनन्द के साथ कजरी को ब्याह ले; इससे उसे हानि ही क्या है? फिर भी ज़रा सा खटका, अन्तर्वेदना रही हो जाती है—सरोज ने उसकी माला फेंक दी। जब कभी सरोज के साथ सिनेमा जाने का प्रस्ताव लाती, सरोज प्रत्याख्यान कर देता, अभद्र, नीच कहीं का! भूली-सी बात की याद से मनिका का मुँह काला पड़ गया। नारी का यह पराजय, ऐसा अपमान! कमरे में अकेली रहने पर भी वह मारे शर्म के पसीने में डूब गई। वह भुनभुनाने लगी—ईश्वर को धन्यवाद कि किसी ने बातें नहीं सुनी। चूल्हे में जाय सरोज, दूसरों की बातों से उसे प्रयोजन? हाँ, आदमी हैं मिस्टर बोस। गत रात्रि की घटनाएँ। जिन्हें कल्पना से रंगीन कर हज़ार बार अनुभव करने पर भी आज दिन जो अतृप्त हो रह गई हैं, जिनकी झंकारें मन में निरन्तर के लिए हो गई हैं, कैसी मधुर, मोहक है वह स्मृति! विनय कल आदर से उसे सिनेमा ले गये थे। 'कृष्णकान्त का विल' (बंकिम बाबू का लिखा हुआ विख्यात उपन्यास) के रोहिणी एवं गोविन्दलाल के अंक देखते समय उसका हाथ अचानक विनय की गोदी में जा गिरा था। उस शिथिल हाथ पर सोहाग से भरा उनका मृदु मधुर स्पर्श। आह! कैसा मीठा, मोहक था वह स्पर्श। मनिका अपने-आप सहमी, अरे यह मैं क्या बकती हूँ। हाँ, यह नीले रंग की साड़ी। नहीं डीप कलर है; चाकलेट कलर, फिर रात में नहीं पहना जाता। तब हलका बादामी जार्जेट, बस यही ठीक है, बड़े आईने के सामने खड़ी होकर वह शृङ्गार करने लगी। गुलाबी पाउडर घिसकर गालों पर लगाई लाई, भौं पर काजल का लेप चढ़ा दिया, ओठों को गुलाबी रंग से रँगकर सेण्ट की शीशी कपड़े पर उड़ेलती हुई वह कमरे से बाहर निकली। उस समय निमन्त्रित लोग आ गये थे।

बैठक के द्वार पर कन्या को देखते ही नीरोजा भीतर आई।

अन्दर आकर वह मनिका को देखने लगी। कौन जाने यदि बनाव-शृङ्गार में कहाँ त्रुटि रह गई हो, तब?

सामने की साड़ी और भी नीचे तक खींचकर, कानों के नीचे तक बालों को

खींचती हुई, नीरोजा बोली—रेनु, पाउडर का डब्बा ले आ। गले में पाउडर लगा ही नहीं। इतनी बड़ी लड़की हुई, फिर भी भोली ही रह गई। किस तरह टायलेट करना पड़ता है, सो भी नहीं जानती।

'तिस पर चार घण्टे तक टायलेट करती रही।'—रेनु झुँझलाकर बोली।

'और तू चार घण्टे नहीं लगाती?'—मनिका चिढ़ी।

'तुमसे जब घर खाली मिले तब न!'

'देख रेनु, अच्छा न होगा। घर में क्या एक ही ड्रेसिंग टेबल है?'

'कपड़े तो उसी कमरे में रहते हैं। तुम सोचती हो, बस, तुम्हारा होने से सभी का हो गया। रात हुई, हम कपड़े न बदल सके।'

'देखो माँ, रेनु सदा इसी तरह ठट्ठा करती है, आज से कुछ भी नहीं करूँगी।'

सावधानी से मनि के आंसू पोंछती हुई नीरोजा ने कहा—तुम दिन-पर-दिन मुँहज़ोर होती जाती हो रेनु!

'क्यों चिल्लाती हो? बाहर जा रही है क्या मामी?'

निखिल को देखकर रेनु हट गई। मनि फिर से ड्रेसिंग-रूम में गई।

'दोनों बहन झगड़ती हैं निखिल!'

'तुम बाहर जाओ मामा, सब अकेले बैठे हैं। मैं उधर देखता हूँ।'

'क्या करती हैं?'—रसोई के द्वार पर निखिल ने पुकारा।

'रोटी बनाती हूँ। तुम्हें किसने बुलाया? जाओ यहां से।'

'तेरी बनाई रसोई कोई खायेगा भी? उसी खिचड़ी की तरह करेगी न? अच्छा, वह खिचड़ी ही थी न!'

किसी दिन गरीब के घर कजरी ने नमक के धोखे खिचड़ी में चीनी छोड़ दी थी। तभी से निखिल उसे चिढ़ाया करता था।

'देखो बूआ, भैया नहीं मानते।'

'उसे क्या चिढ़ाता है। बेचारी काम कर रही है, लगा उसके पीछे। इधर बहन के बिना चलता भी नहीं।' सरस्वती निखिल को डाँटने लगी।

'क्या है दीदी?'

प्रतिमा पर दृष्टि पड़ते ही निखिल ने नाक से रूमाल लगा ली—'कजरिया ने तरकारी जला दी मामी !'

'बिलकुल जल गई ? अब क्या होगा ?'

मुश्किल से कजरी ने हँसी रोकी।

'भैया मेरे, हाथ जोड़ती हूँ, यहाँ से चले जाओ ; वरना अब सच ही जल जायगी।'

'फिर जली नहीं ? मै तो डर गई थी।'

'उसकी बात क्यों सुनती हो बहू ? वह परले सिरे का झूठा है।'

'यह सब तेरी शैतानी है !'

'नहीं मामी, भला मैं क्यों झूठ बोलने गया, वे दोनों छिपाती हैं।'

'अच्छा, अब तू बाहर जा। दीदी, तुम और कजरी भी जाओ, बाकी मैं बना लूँगी।'

'माँ, मैं बनाऊँगी।'

'नही, सबेरे से बना रही हो, अब जाओ।'

'बाबूजी आये ?'

'उन्हें बुखार है।'

'बाबूजी को अकेले छोड़ आई ?'

'मामूली बुखार है।'

'कब ज्वर आया ? सबेरे तो अच्छे थे। बाबूजी को जल्दी से ठण्ड भी लग जाती है। सर्दी तो नहीं है ?'—पिता के लिए कजरी उद्विग्न हो रही थी।

'घबड़ाने की कोई बात नहीं। कपड़े बदलकर बाहर जाकर बैठ।'

लाल साड़ी के आचल को सँभालती हुई बिजली से जगमगाते हुए कमरे में जब कजरी पहुँची, तब अभ्यागतों से कमरा भर गया था।

समवेत कण्ठ के सादर संवर्द्धना में लजाती हुई वह विनय की बाजू में बैठ गई।

'देर क्यों लगाई मिस घोष ?'

'रसोई-घर में थी।'

'रोटी बनाती थी ?'—विनय के प्रश्न में केवल विस्मय ही नहीं वरन् कौतुक भी भरा हुआ था।

'हाँ, घर में वही बनाती है।'—उत्तर दिया मनिका ने।

'ऐसा !'

नीरोजा इनके निकट आकर खड़ी हो गई। 'वे बहुत बातें हैं, और कभी कहूँगी। इनकी माँ गाँव की लड़की है। क्या तुम कभी कजरी के घर गये नहीं ?'

'कई बार गया।'

'तुम्हारी मा को क्या ज़रा भी अकल नहीं है कजरी ? क्या वह नहीं जानती थी कि यहाँ जेन्टलमैन आयेंगे ? एक आर्डिनरी साड़ी पहनाकर लड़की को भेज दिया। और तुम्हारे पिता भी कुछ न बोले ?'

'यहाँ आते समय साड़ी मैं साथ लाई थी काकी !'

नीरेन के पुकारने से नीरोजा उठी, जाते-जाते वह बोली—जब कि तुम्हारी मा ऐसी है, तब मिस्टर घोष ही को देख-भाल करना चाहिए ! सभ्य-समाज में मिलने-वालों को ड्रेस पर दृष्टि रखना एक ज़रूरी बात है।

कुछ कहती हुई कजरी रुकी।

'मुझे आश्चर्य है मिस घोष।'—विनय ने कहा।

'इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है, मिस्टर बोस।'—परिहास के साथ मति ने कहा—'हाई थिंकिङ्ग और सिम्पल लिविङ्ग' (उच्च विचार करना और साधारण भाव से रहना) उसके प्रिन्सपल हैं।

'किसी भी तरह इनके टेस्ट (रुचि) की प्रशंसा नहीं की जा सकती, मिस मिटर।'

'क्यों महाशय ?' कजरी पूछ बैठी।

'कोई स्त्री अपनी इच्छा से ऐसी मोटी साड़ी पहनकर सोसाइटी में मिल सकती है, यह अपनी आँखों देखे बिना विश्वास ही न करता।'

'यह साड़ी मुझे बहुत भली लगती है। कुमिल्ला के अभया-आश्रम की बनी है। पक्का रंग है, देखने में जैसी सुन्दर, वैसी मजबूत भी है।'

'ठीक है, घर ही में पहनतीं।'

'बाहर के लिए इससे अच्छी साड़ी मेरे पास नहीं है।'

'झूठ क्यों बोलती है कजरी ? हर महीने काका अच्छे-से-अच्छे कपड़े ला देते हैं।'

'वे तो विलायती हैं मनि।'

'तो क्या हुआ ? इतने दिनों तो वे ही पहनती थीं !'

'वह मेरी भूल थी, क्या जीवन को भूल ही में बिता दूँ ?'

विनय ज़ोर से हँसा।

'तो ऐसा कहिए कि आप पर भी 'देश-भूत' सवार है। डेम खद्दर, मैं नहीं देख सकता। विशेषतः आज दिन स्त्रियों में वह एक फैशन-सा हो रहा है ; किन्तु ठण्ढे होने में भी ज़्यादा दिन न लगेंगे।'

'यदि वह वास्तव में देशी-भूत ही हो, तो मुझे वही पसन्द है। मैं नहीं समझती कि इससे दूसरों को हानि पहुँच सकती है।' कजरी का मुँह लाल हो रहा था। विनय चिढ़ा, यह तरुणी बाहर से चाहे सुन्दर हो ; पर इसका अन्तर जैसा ही कठोर, वैसा ही अभद्र भी है। बी० ए० क्लास की छात्रा होने पर भी लोगों से मिलना नहीं जानती।

'नुकसान भला किराका क्या होगा ? परन्तु पिकेटिङ्ग करते समय पुलिस की लाठी के आगे यदि देश-भक्ति समान रह जाय तभी न ?'

'क्या इन बातों को आप प्रमाणित भी कर सकते हैं मिस्टर बोस ?'

'ज़रूर, हज़ार बार। उस दिन अपनी आँखों मैंने देखा···'

'चुप भी रहिए। अपनी बात साबित करने के लिए जो व्यक्ति देश के माननीयों को, देश-भक्तों को···।'

कुछ देर ठहरकर कजरी फिर बोली—जान-बूझकर जो झूठ बोलते हैं, देश-भक्तों को जो व्यक्ति जबरदस्ती प्रतारक साबित करना चाहते हैं, वैसों को तो मैं···

'कहिए-कहिए, वैसे आदमी से आप घृणा करती हैं, यही कहना चाहती हैं न ? साथ ही इस बात का विचार भी करना अनुचित न होगा कि आपकी तथा विराग से उसे कुछ भी लाभ और हानि नहीं होगा।'

'क्या करती है कजरी ? आप ठहरिए मिस्टर बोस, तू भी चुप रह कजरी। झगड़ा बन्द करके कजरी का गाना सुनिए, अच्छा गाती है।'

'मनि झूठ बोलती है, वही अच्छा गाती है '

'इनका गाना प्रायः सुनता हूँ। कृपा कर आप गाइए।'

'आज क्षमा कीजिए मिस्टर बोस ।'

'मुझ पर आप असन्तुष्ट हैं; किन्तु फिर भी कहूँगा, क्षमाप्रार्थी को शायद विमुख न करेंगी ।'

'अरे ! यह क्या, हाथ मत जोड़िए । नहीं-नहीं, नाराज़ क्यों होने चली ? आज के लिए माफ़ी माँगती हूँ ।'

'ऐसा क्यों ?'

'पिता की तबीयत ठीक नहीं है, इससे अच्छा नहीं लग रहा है ?'

'मैं समझी, न जाने क्या है ?'— मनिका की व्यंग्य-भरी हँसी से कमरा गूँज उठा ।

'हँसी की कोई बात तो न थी मनि !'—कजरी आश्चर्य में हो रही थी ।

'आपका लड़कपन अभी गया नहीं मिस घोस !'

माता को देखकर एक छोटी बालिका जैसी मनिका मचल पड़ी—माँ, यहाँ गरमी है, मिस्टर बोस के साथ में बगीचे में टहलती हूँ ।

[६]

'भला यह भी कोई बात है, अब मैं कहाँ तक चुप रहूँ ।'

'वह ऐसी कौन-सी बात है ?'

आराम-कुर्सी पर विरक्त मुँह से अधलेटे हुए नीरेन पड़े थे । टेबल पर हाथ धरे नीरोजा खड़ी थी ।

उत्तर न पाकर उसने फिर अपना प्रश्न दोहराया—'आखिर कहो भी तो, क्या है ?'

'सदा तुम दीदी का अपमान किया ही करती हो, अब लड़कियाँ भी करने लगीं । तुम उन्हें रोकती तक नहीं हो ?'

'तुम्हारी दीदी लड़कियों के पीछे क्यों पड़ जाती हैं ? ये बड़ी हुईं, एज्युकेशन पा रही हैं, उनसे वही गँवारी बर्ताव !'

'सुनो, कालेज में न पढ़ने पर भी उनके पिता से बहुत कुछ सीखा था । उनं नालेज तुमसे कहीं ज़्यादा ही है ।'

'अच्छा, ऐसा !'

पत्नी के स्पष्ट परिहास से नीरेन अपने-आपको सँभाल न सके—'देखो !'

'नहीं, तुम सुनो, अपनी दीदी को मना कर दो, मेरी लड़कियों के पीछे न पड़ें ।'

'बहुत दिनों से दीदी चेतला जाना चाहती थीं, उन्हें रोककर मैंने बुरा किया।'

'यह बात तुम भाई-बहन समझो, मुझसे कुछ सम्बन्ध नहीं।'

'अच्छा; पर यह भली भाँति समझ लो कि निखिल के चले जाने के साथ-ही-साथ सरोज और विनय को आशा छोड़नी पड़ेगी।'

'तुम यही कहना चाहते हो न कि निखिल के लिए ही वे हमारे घर आया करते हैं? पर मेरे विचार से तो यदि लड़की में रूप-गुण है, तो वैसे करोड़ों सरोज और विनय पैर छुयेंगे।'

'वे दिन अब गये नीरोजा! ऐसी ग्रेजुएट कितनी पड़ी हैं। कजरी ने बी० ए० पास किया, तो कितने वर उसके घर धरना देने आये?'

'क्या पागलों की-सी बातें करते हो? हमारी लड़की और कजरी से तुलना? ग्रेजुएट होना ही सब कुछ है?'

'यह तुम्हारी भूल है नीरोजा।'

'चुप भी रहो, विनय को देखो। या अब भी प्रमाण की ज़रूरत है?'

'याद नहीं, पहले सरोज भी झुका था। फिर क्या हुआ, वही जाने। वह पैसे-वाला है, विलायत हो आया है, इंजीनियर भी है, लड़की सुख में रहती। विनय की प्रैक्टिस जमने में अभी देर है।'

दीर्घ-श्वास लेती नीरोजा बोली—न-जाने सरोज का कैसा टेस्ट है, आखिर कजरी को पसन्द किया। रूप-गुण में कजरी मनि के पैर के पास भी खड़ी होने के योग्य नहीं है।

'ब्याह ठीक हो चुका क्या?'

'मनि तो कहती है।'

'लड़का बहुत अच्छा है।'

'जाने दो, उसके साथ मनि सुखी न होती। सुनते हो? अपना यतीश डाक्टर कैसा है? तुम ज़रा चेष्टा करो।'

'चेष्टा की कमी नहीं है, वैसा वर करोड़ों में एक न मिलेगा। लड़कियों के लिए ही पैसा खर्च करके सदा पार्टी दिया करता हूँ। अब उन्हें अपनाना लड़कियों का काम है। यतीश एक अद्भुत आदमी है।'

'काकी !'

'कौन है, कज ो ? आओ बेटी, मिस्टर घोष अब कैसे हैं ?'

'अच्छे हैं, मनि कहाँ गई ?'

'मार्केट गई है ।'

'मनि और रेनु ?'

'नहीं, रेनु घर में है, वह विनय के साथ गई है । बैठो, आती होगी ।'

'मैं रेनु के पास जाती हूँ ।'

रेनु बाग में टहल रही थी, उसने कहा — कजरी दीदी, बहुत दिनों में आईं ।

'बाबूजी बीमार हैं बहन !

'अब कैसे हैं ?

'कुछ अच्छे हैं । मनि का रिज़ल्ट निकला ? और तेरा ?'

'मैं पास हुई ; पर दीदी शायद ही पास हो ।'

'वह तो कहती थी कि अच्छे पेपर किये हैं ।'

'वे सब उसकी बनाई हुई बातें हैं । दिन-रात सिनेमा, थिएटर और विनय बाबू से गप्पें करने से उसे फुरसत कहाँ जो पढ़ती । रोज सिनेमा-थियेटर जाना उसे ज़रूरी है । बस केवल हमारे थियेटर जाने के लिए बाबूजी को पैसों की कमी हो जाती है, उसके लिए नहीं ।'

'ऐसे विचारों को छोड़ दो । छिः, मनि तेरी बड़ी बहन है ।'

'बड़ी बहन क्या ऐसी होती हैं, जो चौबीसों घण्टे अपने बनाव-शृङ्गार को ही सँभालती रहती हैं ? मैं तो सच कहने से मुँह न फेरूँगी ।'

कजरी विस्मय के साथ उसका मुँह निहारने लगी ।

'चलो, उधर टहलें ।'

बड़ा-सा गुलाब रेनु की चोटी में गूँथती हुई कजरी ने कहा—आज जाती हूँ, यदि हो सका, तो कल आऊँगी । तीन दिन से भैया के आश्रम में नहीं गई, और ज़र देखूँ, शायद आ जायँ ।

'दीदी के भरोसे मत बैठी रहो, नौ बजे रात तक लौटेगी ।'

'अरे बाप रे, कैसी झूठ बोलती है। नौ बजे रात तक मैं बाहर रहती हूँ? कहिए मिस्टर बोस; यह सच है या झूठ?'

वह कजरी के गले से लिपटकर बोली तेरे आने की खबर सुनकर मैं दौड़ी चली आई। हाँफ गई, चल उस बेंच पर बैठें।

अपने निकट कजरी को बैठाकर उसने विनय से कहा— यहाँ बैठिए मिस्टर बोस।

एक ही बेंच पर बैठने में विनय को संकोच करते देखकर मनि हँसी—यहाँ बैठने में आप हिचकते क्यों हैं? बैठिए।

सबसे बड़ा गुलाब दिखाकर रेनु ने कहा—देखिए मिस्टर बोस, कितना बड़ा गुलाब है, इसकी कलम बाबूजी ने दीजिलिंग से मँगवाई थी।

विनय के अंग पर ढलती हुई एक ज़िद्दी बालिका की तरह मनि बोली मैं लूँगी। ऐसा गुलाब तुमने कभी देखा था, कजरी?

'भैया के बगीचे में इससे भी बड़ा फूल है, मनि।'

'इससे बड़ा? और मैं न देखती?'

'गोविन्दजी के मन्दिर के पास जो गुलाब है, उसे देखा है?'

'उस ओर गई ही नहीं, आप गये थे मिस्टर बोस?'

'नहीं; जाता कैसे! मेरे ऐसे नॉन-हिन्दू के स्पर्श से यदि मन्दिर अपवित्र हो जावे तब?'

'फिर क्या था, ऐसी सर्दी में कजरी ही को मन्दिर धोना पड़ता।'

'धोये बिना भी चल जाता, मनि?'—सहज कण्ठ से कजरी ने उत्तर दिया।

'नहीं मिस घोष, धोना ही पड़ता।'

'यह आपने कैसे समझ लिया कि धोना ही पड़ता?'

'उस दिन मन्दिर के द्वार पर पहुँचा ही था कि पुजारी हाँ-हाँ करते दौड़ पड़े, मैं डरा कि अब मारता है।'

'तब आपने क्या किया?'— कजरी खिलखिला पड़ी।

'हमें तो निशि-दिन का अभ्यास है, वही याने पृष्ठ-प्रदर्शन।'

जलती हुई मनिका बोली—आप हँसते हैं; पर मुझे तो आग लग गई। वहाँ

से हटे क्यों ? खड़े रहकर देखना था, वह चोटी धारी बम्हना क्या करता है, बूआ और भैया क्या करते हैं ?

कजरी ने जवाब दिया--मैं सोचती हूँ, वे विशेष बातें कुछ भी न करते ; किन्तु भला क्यों चिढ़ रही है, मनि ? आपने भला किया मिस्टर बोस, देवता का अपमान करने से अपने को प्रयोजन ही क्या है ।

'बुरा, किया आपने, कावर्ड ।'—मनि उत्तेजित हो रही थी ।

'भूल है मनि ! देवता को सम्मान न दिखाना ही कापुरुषता है । भला किया, आप चले आये, अच्छा किया । मुझे बड़ी खुशी हो रही है ।'

'चलो, एक से तो प्रशंसा मिली, यथालाभ ।'

कजरी जल गई - क्या कहते हैं, अच्छा, यदि भैया कहें तुम्हें—'विनु भैया !'

'निश्चय, निश्चय, हज़ार बार । मैं आनन्दित होऊँगा, मिस घोष !'

'तो मिस नहीं, मिस घोष सुनते-सुनते मैं ऊब गई । मेरा नाम तो बहुत बड़ा नहीं है भैया ?'

'अब न कहूँगा ।'

इसके संकोचहीन सरल तथा शिष्टाचार-पूर्ण व्यवहार से आनन्द के साथ विनय विस्मय का अनुभव कर रहा था । कैसी अद्भुत इसकी प्रकृति है, अभी उस दिन के इसी के गर्वित, शिष्टाचार-विरुद्ध बर्ताव के साथ आज के बर्ताव का किसी तरह भी सामंजस्य नहीं हो सकता ।

'क्या सोचते हो विनु भैया ?'

'मैं ?'—विनय का चकित-भाव तरुणियों की दृष्टि से छिपा न रहा । विष-पूर्ण ईर्ष्या मनि के नेत्रों में मूर्त हो उठी—पृथ्वी की ज्योति पर जैसे सहसा किसी ने काला पर्दा डाल दिया हो ।

अधीरता के साथ मनि ने कहा—मैं बाबूजी के साथ थिएटर जाती हूँ, तुम कजरी के पास बैठे रहो ।

'सभी बातों में दीदी चिढ़ती हैं ।'

'मेरे सिर में दर्द है, आप पिता के साथ जाइए ।'

'मनिका, रेनु, घर पर आना, आज जाती हूँ ।'

कजरी उठकर खड़ी हो गई।

'मुझे तो नहीं जाना है कजरी!'

विनय के उन अभिमान से भरे शब्दों ने कजरी के हृदय को ठेस पहुँचाई। अनुतप्त कण्ठ से वह बोली—कैसी बातें करते हो भैया, तुम ज़रूर आना, समझे विनु भैया, ज़रूर, ज़रूर।

'मेरी तरफ़ से दोनों वक्त जाना मिस्टर बोस!'—अन्तर्वेदना को मनिका किसी तरह छिपा नहीं सकती थी।

मनि के व्यवहार से कजरी तथा रेनु विस्मित तो अवश्य हुईं; परन्तु विनय को लेश-मात्र आश्चर्य न हुआ। यह मान, अभिमान पुरुष और नारी के, उस नशे आदि के साथ विलायत में रहते समय वह भली भाँति परिचित हो चुका था। इसके सिवा स्वदेश के अग्रसर समाज में भी विनय को मनि की प्रतिमूर्तियाँ बहुत दिखी थीं; परन्तु यदि आश्चर्य की कोई वस्तु देखी; तो वह यही किजरी लड़की थी। रूप-यौवन-धन-विद्या-गर्विता वह जो तरुणी अभी-अभी उसे दूर हटना चाहती है; पर वह कितनी देर के लिए?

विनय की चिन्ता बाधा-ग्रस्त हुई।

'विनु भैया, तुम लोग थिएटर जाओ, क्या सोच रहे हो?'

'जाता हूँ।' वह सोचने लगा—इसने किसी भी दिन मुझे आकर्षण करना न चाहा, संगीत-जैसी निर्मल नारी—इसके सारे अंगों से फूलों की वर्षा हुआ करती है, उस वर्षा में न तो मादकता रहती है और न उन्मादिता।

'मनि को लेकर जाओ विनु भैया!'—अनुनय के साथ कजरी ने कहा!

'मैं किसी की दया की भूखी नहीं हूँ और न हमारे बीच किसी के बोलने की ज़रूरत है।'—मारे अपमान के कजरी का मुँह इंगुर-जैसा लाल हो गया।

रेनु ने कहा—छिः, दीदी!

कजरी ने सहमी हुई आँखें उठाईं—अच्छा, नमस्कार!

कमरे में घुसकर बड़े अभिमान से मनि ने कहा—थिएटर ले चलो बाबूजी!

'विनय कहाँ गया? चला गया क्या!'

'नहीं, मैं तुम्हारे साथ जाऊँगी।'

'मिस्टर बोस से दीदी झगड़ आई है।'

विनय भी कमरे में पहुँच चुका था, उसने कहा—तैयार हो जाओ, मैं यहीं हूँ।

'तुम ले चलो बाबूजी।'

'तुम विनय के साथ जाओ, हमें डिनर में जाना है।'

नीरोजा झुँझला उठी।

कजरी को साथ लिये सरस्वती ने द्वार पर से पुकारा—चाभी लो बहू, हम चेतला से जल्दी लौटेंगे।

'आज जाने से कैसे काम चलेगा? हमें बाहर जाना है।'

'तब तक दीदी लौट आयेंगी।' पत्नी को नीरेन ने उत्तर दिया।

'एक दिन न जाने से हानि ही क्या है?'

मनि बेसुरे कंठ से बोली—जानती नहीं मा, बुआ के न जाने से सरोज बाबू के खाने-पीने में तकलीफ़ होगी।

'सरोज के लिए मैं गृहस्थी नहीं बहा सकती। घर सूना रहने से नौकरों को चोरी करने में सुविधा होती है। तभी तो महीना खतम होने के पहले सामान चुक जाता है।'

जिसके उद्देश्य में ये बातें कहीं गईं, वह चुप रही; परन्तु मनिका से चुप न रहा गया।

'सरोज बाबू से तुम्हारी गृहस्थी बड़ी नहीं!'

'पर मुझे तो सभी बातें देखनी हैं, खर्च करके किसी को रखना, वह तो अपने ही सुभीते के लिए, यह बात प्रत्येक को सोचनी चाहिए।'

विनय के सामने गृह-विवाद को नीरेन दबाना चाहते थे। उन्होंने कहा—तुम सब-के-सब पागल हो, जाओ दीदी। और तुम एक छोटी-सी बात पर क्या करती हो नीरोजा?

'सब सामान ताले में बन्द हैं। आओ कजरी!'

अवाक् कजरी खड़ी रह गई। अत्यन्त विस्मय के साथ विनय सरस्वती का मुँह निहारने लगा। सरस्वती के संयत भाव, उदार हँसीने नीरोजा के साथ ज़हर का काम किया, विशेषकर विनय के सामने। कठोर स्वर से नीरोजा ने कहा—ठहरो!

सरस्वती लौटी।

'अगले महीने से यहाँ स्थान न रहेगा।'

तीव्र स्वर से नीरेन ने पुकारा—नीरोजा!

'मैं बहरी नहीं हूँ। मनि, रेनु, चलो।'

नीरोजा चली गई। सरस्वती हँसकर बोली—आठ के पहले लौटूँगी।

[७]

धूप-दीप की सुगन्ध कमरे में फैल रही थी। प्रतिमा हाथ जोड़े काली के पट के सामने बैठी थी। अमंगल का पूर्वाभास जैसे उसके हृदय की तन्मयता, भक्ति की एकाग्रता को टुकड़े-टुकड़े कर रहा था।

हृदय का अन्तरतम प्रदेश व्यथा से व्याकुल हो रहा था। चित्त किसी तरह स्थिर होना न चाहता था, एकान्त मन से वह देवता को भी पुकार न सकती थी। पति—उसके पच्चीस वर्ष के साथी—आज जीवन-मरण की सन्धि में थे, मानो किसी भी मुहूर्त में मौत उस सुन्दर शरीर को चूसने के लिए प्रस्तुत थी।

क्या वह पति को मौत के हाथ से छीन नहीं सकती?—प्रतिमा सोचने लगी—यदि अदृष्ट में वैधव्य ही हो? नहीं, वह अदृष्ट नहीं मानती। मानव-शक्ति के सामने क्षुद्र वह अदृष्ट! मानव-शक्ति क्या ऐसी ही तुच्छ वस्तु है? एक दिन, जब कि भारत की नारी बेहुला, सावित्री आदि मृत पति को जिलाने की स्पर्द्धा रखती थीं, तो क्या वह न कर सकेगी? उन्हीं नारी का अंश तो उसमें भी है! वह उसी भारत ही की रमणी है; किन्तु एकाग्रता, एकनिष्ठा? हाय-हाय! यह वह क्या कर रही है। प्रतिमा चिन्ताओं को हटाना चाहती थी; परन्तु सोई हुई पिछली घटनाएँ जो कि मानाभिमान, सोहाग, आदर आदि से भरी हुई थीं, उनके जग जाने से अन्तर में खलबली-सी मच गई।

पागलों की नाईं जब प्रतिमा रोगी के कमरे में घुसी, तब वारीन की रुग्ण शय्या घेरे हुए कई मित्र बैठे थे। वारीन की चिकित्सा के लिए डाक्टर उडओआर्ड और डाक्टर यतीश नियुक्त हुए थे, यतीश, निखिल, विनय तथा सरस्वती बैठी थीं।

प्रतिमा पर दृष्टि पड़ते ही सरस्वती सिहर उठी।

'बैठो बेटी, घबराओ मत।'

'दीदी, क्या वे अच्छे न होंगे ?'

प्रश्न ज़रा विचित्र-सा था, फिर भी उसे साहस देती हुई सरस्वती बोली—अच्छे होंगे, तुम इनके पास बैठो, घबराने से रोगी को हानि पहुँचेगी। प्रतिमा को लुप्त चेतना लौटी, वह वहाँ बैठ गई। पिता के मुँह में अनार का रस डालकर कजरी ने पूछा · बाबूजी, छाती का दरद कुछ कम है ?

'एक ही-सा है।'

'तुम सो जाओ, और भैया, तुम सब उस ओर बैठो।'

'हम बाहर बैठते हैं।'

'बाहर नहीं, इसी कमरे में उधर बैठिए, ज़रा धीरे से बात करिए।'

वह पिता के सिरहाने बैठ गई एवं कुछ देर के बाद धीमे स्वर से बोला—बाबूजी सो गये मैं सूप ले आऊँ, मा ?

कलकण्ठ की हँसी से कजरी की दृष्टि सर्वप्रथम पड़ी, उस मुख में विलासिता, आनन्द-गर्व आदि भरे क्यों न हों ; परन्तु दुखी के लिए व्यथा, संवेदना का एक छोटा-सा चिह्न तक वहाँ नहीं था।

'बाबूजी सोते हैं, काका, आप उधर बैठिए।' उसने दबी आवाज़ से कहा।

'अच्छा।'—चुपके से मुनि ने उत्तर दिया ; किन्तु दूसरे ही क्षण वह भूल बैठा। यतीश की कुर्सी पर झुककर उसने कहा—आपके तो दर्शन ही नहीं मिलते, तबीयत ठीक है ?

'हाँ, आप बैठ जाइए, जोर से बात मत करिए।'

'क्यों डाक्टर रे . राम ..?'

'हम मरीज़ के कमरे में बैठे हैं, यह सत्य भूल जाने से कैसे चलेगा ?'

'हाँ हाँ, मैं ही भूलती हूँ ; पर आज ही सबेरे किसी ने कहा था कि काका अब अच्छे हैं।'

'नहीं, उनकी हालत खराब है।'

कुछ देर तक वह निस्तब्ध रही ; किन्तु चुपचाप बैठना उसके स्वभाव के विरुद्ध था, उसने प्रश्नों की झड़ी-सी लगा दी . कृष्णकान्त का विल पहले-पहल प्ले हुआ, आप गये थे देखने ?

'नहीं, आप गई थीं ?'

'मुझे तो मिस्टर बोस ले गये थे।'

'अच्छा लगा ?'

'बहुत ही भला था। कह नहीं सकती कि कैसा सुन्दर प्ले था। रोहिणी का सीन सबसे अच्छा था।'

'कौन-सा ?'

वही जिसमें गोविन्दलाल ने उसे पानी से निकाला। वह सीन मार्वलस हुआ।

यद्यपि मनि के आज के बर्ताव में नूतनता न थी, फिर भी अत्यन्त आश्चर्य के साथ विनय उसका मुँह निहारने लगा—मृत्यु-मलिन, स्तब्ध, निरानन्द घर में बैठकर वह इस आलोचना में योग न दे सका।

मनि ने प्रश्न किया—अच्छा डाक्टर रे, क्या आप कभी भी सिनेमा-थिएटर नहीं देखते ?

'हम डाक्टरों को समय कहाँ ? दिन-रात काम और काम।'

'ओ, वेरी टीडिअस, रात में क्या करते हैं ?'

'पढ़ता हूँ।'

'हेल्थ बिगड़ जायगी, है न बाबूजी ?'

'ज़रूर। जीवन में थोड़ा-बहुत आमोद भी प्रयोजनीय है। कभी मेरे घर आ जाया करो, साथ ही सिनेमा चलेंगे।'

'चेष्टा करूँगा।'

आनन्द के साथ तालियाँ बजाती हुई मनि चिल्लाने लगी-- थ्री चियर्स फॉर डाक्टर रे।

वारीन यन्त्रणा-सूचक शब्द कर उठे, उनकी तन्द्रा टूट गई।

'बाबूजी !' – कजरी पिता के मुँह पर झुक पड़ी।

'बड़ा दरद है कजरी !'

'मैं हाथ फेरती हूँ।'

'तुमने कुछ खाया ?'—वारीन हँसने का व्यर्थ प्रयास कर रहे थे।

'आप सब मेरे निकट आकर बैठ जाइए।'

डाक्टर ने कजरी के निषेध को ही दोहराया।

'आप चुपचाप पड़े रहिए, हम यहाँ बैठते है।'

वारीन ने कहा—अच्छी हैं न, मिसेस मिटर?

'हाँ, कई दिनों से आपको देखने का विचार कर रही थी, काम-धन्धों से छुटकारा ही नहीं मिलता।'

'क्या बीमारी है?'

'निमोनिया है, दोदो रोज़ आती हैं।'

'कौन दीदी?'

सरस्वती को दिखाकर वारीन ने कहा—मेरी बड़ी बहन के मरने पर भी आपको ननद के कारण हमें उनका अभाव जाता रहा। अब तो यही एक बहन है मिसेस मिटर।

···'ठीक है।'

'यदि यह चेतला से रोज न आतीं···'

'बाबूजी फिर बात करते हो?'

'आठ दिन से चुप ही हूँ बेटी, आज बोल लेने दे।'

'नहीं, बीमारी बढ़ जायगी।'

यतीश ने कहा—हम सब बातें करते हैं, आप सुनिए। तुम्हारा आश्रम कैसा चलता है निखिल? खद्दर-चरखा चालू है न?

'चल तो अच्छा रहा है, देखने जाना।'

'जाऊँगा, क्या करें भाई, समय नहीं रहता।'

मनि ने कहा—भैया का वह नानसेन्स आश्रम देखकर टाइम वेस्ट करने से कुछ भी लाभ न होगा डाक्टर, इससे तो सिनेमा-थिएटर देखना कहीं अच्छा है।

'आपसे सहमत न हो सका मिस मिटर!'

'क्यों?'

'यद्यपि मैं खादी-आदी ज़्यादा व्यवहार नहीं करता, फिर भी उसे अवहेलना करने की स्पर्द्धा भी नहीं रखता। आश्रम देखकर शायद लाभ न हो; पर हानि ही क्या है? किन्तु सिनेमा में हानि—एक ज़रूरी बात है। तुम्हारा कहना क्या है निखिल?'

यतीश हँसने लगा। केवल नीरोजा और मनिका उस हँसी में योग न दे सकीं।

'हानि याने ? अर्थ-व्यय ? वह न सही···'

मनि के मुँह की बात छीनकर डाक्टर ने कहा—आप दे देंगी ?

'धन्यवाद, मिस मिटर।'

दूसरी ओर आलोचना को फेरने की इच्छा से निखिल बोला—मामा के बीमार पड़ने से बहुत नुक़सान हुआ यतीश !

'क्यों भाई ?'

'कजरी न जा सकी, उसकी तरह सु-नियम से हम कहाँ काम कर सकते हैं ?'

मुसकान की एक हलकी सी लकीर यतीश के ओठों पर खिल गई। उसने कजरी से पूछा—तो आप भी स्वराज्य-प्रार्थियों में एक हैं ?

कजरी की लाज-रक्तिम हँसी का वह टुकड़ा युवकों के नेत्रों में स्वप्न का सुनहला जाल बुनने लगा।

पिता ने बेटी की ओर मुग्ध दृष्टि डाली, और बोले—कई दिनों से कजरी का चरखा भी बन्द है।

'रहने दो। तुम अच्छे हो जाओ, मैं बहुत सूत कात लूँगी।'

'सूत रोज़ कातती हैं ?'—यह यतीश का प्रश्न था।

उत्तर दिया निखिल ने—कजरी अकेली नहीं, मामी भी कातती हैं, उधर दोपहर में पड़ोस की स्त्रियाँ भी सीखती हैं।

'अच्छी बात है, बहुत अच्छी।'—प्रसन्नता के साथ डाक्टर ने कहा।

नीरोजा ने टोक दिया—कौन जाने, इतने दिनों तो नीच जाति, याने मज़दूर-जुलाहे ही तांत, चरखा काता-बुना करते थे, अब देखती हूँ, भले घर की स्त्रियाँ भी उनमें शामिल हो गईं। यहाँ तो हुल्लड़ की देर रहती है।

'यह तुम्हारी ग़लती है। जो लोग इस काम को करते हैं, वे हृदय के साथ ही करते हैं। हमारे देश के प्राण ही ठहरे, कृषि, तांत और चरखा। प्रायः सत्तर साल पहले दरिद्र स्त्रियाँ सूत कातकर लड़कों के पढ़ाने का खर्च चलाती थीं। ढाका की मसलिन जगत्-विख्यात् है। इलाहाबाद, पटना, शान्तिपुर, चटगाँव, पंजाब आदि देश महीन कपड़ों के लिए प्रसिद्ध हैं। ज़्यादा कहने की ज़रूरत नहीं, अभी कई साल

पहले तक दोपहर के अवसर घर की बूढ़ी-पुरानी सूत कातने में बिताती थीं। आज भी वह प्रथा गाँव में दीखती है। इस मूवमेंट ने तो केवल हमें सोते से जगाकर चरखा हाथ पर धर दिया है। कोई नई बात नहीं है मामी !'

वारीन ने कहा—निखिल ठीक ही कह रहा है, कृपि और···

'बाबूजी फिर ?

एक छोटे बच्चे की नाईं आँखें बन्द कर वारीन ने कहा—मैं तो चुप-चाप हूँ, कजरी !

'चाहे कुछ भी हो, भले घर की स्त्रियों के हाथ पर चरखा नहीं सोहता। क्यों न विनय ?'

उत्सुक जिज्ञासु नेत्रों से नीरोजा उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी।

'पहले खराब लगता था।'—धीरे से विनय ने कहा।

'और कुछ दिनों के बाद तुम्हीं कहोगे कि भद्र महिलाओं के हाथ में टेनिस के बदले चरखा ही सोहता है। वही तो लक्ष्मी-श्री है भाई ! मेरे विचार से तो नारी अधिक भली···'

डाक्टर ने पूछा—वह कौन-सी वस्तु है भाई ?

आँखें बन्द कर निखिल कहने लगा लाल किनारे की खादी की साड़ी, शंख की चूड़ियों और चरखा से उनके माधुर्य, गौरव, और सुन्दरता का पूर्ण विकास होगा।

हँसी रोकता हुआ डाक्टर बाहर भागा।

कुछ देर के बाद यतीश अन्दर आया। निखिल ने उससे पूछा—हँसे क्यों यतीश ?

'तुम्हीं ने तो हँसाया।'

'याने ?'

'आँखें बन्द कर किसका ध्यान कर रहे थे ?'

अपने अन्तर में मैं माँ बहनों के उस रूप का अनुभव कर रहा था डाक्टर !'

स्तब्ध विस्मय के साथ यतीश निखिल का मुँह देखने लगा।

[८]

बहुत पहले की बात है जब कि जीवन-संगीत पूर्ण हुआ था ; किन्तु उस गीत में झड़ी उसी दिन लगी थी, जिस दिन कि कजरी को गोदी में उठा लिया था। जीवन

चरितार्थ हुआ था—पत्नीत्व के मिश्रण से मातृत्व में। यह सब कुछ सच होते हुए भी यह भी झूठ नहीं है कि आज दिन वे सब वैसे ही हैं, पत्नीत्व, गृहिणीत्व, मातृत्व सब कुछ वैसे ही हैं, फिर यह दीनता, हाहाकार, सौमाहीन अन्धकार किस लिए ? यद्यपि पति जीवित नहीं हैं, किन्तु अधिकार तो सभी वैसे ही रह गये हैं। देवता के दिये—उन महान्, अटूट अधिकारों को छीन लेने की शक्ति—तुच्छ मौत कहाँ से पाती ! फिर यह निर्लिप्त भाव क्यों और किस लिए ? आँसू पोंछती हुई प्रतिमा फिर सोचने लगी—कहते हैं, आत्मा अमर है। यद्यपि मरण ने आज स्वामी को पृथक् कर दिया है, तो भी वे मेरे ही हैं। तब यह बुभुक्षा, असहनीय दाह किस लिए ? दृष्टि की तृप्ति स्पर्श-अनुभूति नहीं है, क्या इसी से यह कष्ट है ?

उस दिन वे बहुजन के होकर थे ; परन्तु आज तो वैसा नहीं है, आज केवल वे सहधर्मिणी ही के हैं। अन्तर भरकर क्या उन्हें अनुभव न कर सकेगी ? विच्छेद की मार्मिक व्यथा चाहे कैसी भी कष्टकर क्यों न हो ; पर उनकी स्मृति एकान्तरूप से उन्हें पाने का यह अधिकार क्या सान्त्वना न दे सकेगा ?

प्रश्नों की मीमांसा प्रतिमा अपने आप ही करती जाती थी। इतने में मनिका, नीरोजा, दुर्गा ठकुरानी एवं उनकी कन्या प्रभा पर दृष्टि पड़ गई। वह सहमी। फैले हुए सामानों में से दरी निकालकर उन्हें बैठाया।

'जगन्नाथजी से कब लौटीं दीदी ?'—उसने पूछा।

वात-जनित क्लेश से घुटना टेकती हुई बैठकर दुर्गा ने कहा—कल ही तो लौटी बहू। अन्त तक वारीन को रख न सकी, अभागी ? क्या करे। तेरे अदृष्ट में वैधव्य ही लिखा था। मेरा ही देखो, कहीं कुछ नहीं, अचानक लड़की विधवा हुई। अदृष्ट में मरण भी नहीं, कहाँ मैं जाऊँगी, सो नहीं, मैं तो मरते-मरते अच्छी हो उठी, जवान लड़का एक ही पल में चल बसा, दामाद गया, नाती गया, मैं केवल मैं ही बची। लड़की-बहू के आगे मुँह दिखलाते मारे शर्म के गड़ जाती हूँ। वृद्धा रोने लगी।

कन्या प्रभा सान्त्वना देती बोली—क्या करोगी मा ? सहो, किताबों में लिखा ही है कि बूढ़े, विधवा एवं अकर्मण्य को यम नहीं पूछते। तुम्हारी बीमारी ही प्रमाण है। वैसी स्थिति के बाद भी तुम जी उठीं। ठीक है न प्रतिमा मामी ?

निर्वाक् विस्मय से प्रतिमा बैठी रह गई।

'कहो मामी ?'

'मैं ऐसा नहीं सोचती ।'

'कैसा नहीं सोचतीं ?

'कि मौत ही एक कामना की वस्तु है, या मरना कोई बहादुरी की बात है। मत रोओ दीदी ! न अनुताप करने और न शर्माने ही की बात है। लज्जा ढांकने की नीयत से, कर्तव्यों को तुच्छ कर जो मौत है, उसमें दुर्बलता, स्वार्थ, पराजय, कैसी ही क्यों न भरी हो ; सार्थकता नाममात्र भी नहीं।

'यह कैसी बातें करती हो मामी ? जो नर-नारी संसार के बोझ-से हैं, उनकी मृत्यु ही तो कामना की वस्तु है। शास्त्र कहता है . '

'मृत्यु कामना की वस्तु हो सकती है, कारण, विच्छेद की व्यथा से वह कामना स्वाभाविक है ; पर लज्जा तथा दूसरों के धिक्कार पर, अपने को घृणा करने की आवश्यकता भी नहीं है प्रभा। विचारो तो सही, जो व्यक्ति अपने-आपको घृणा करता है, छोटा समझता है, क्या वह कभी कोई भला काम कर सकता है ? कैसी भी स्थिति क्यों न हो, न तो अपने का घृणा करना चाहिए और न छोटा समझना चाहिए। शास्त्र की क्या बात कहतो थीं ? उसमें कहीं पर भी मरने को, याने— आत्महत्या की व्यवस्था नहीं है।'

'आगे के दिनों में 'जौहरव्रत' का क्या उद्देश्य था ?'

'उस पर मतभेद है। कोई कहता है, पत्नी पति की अनुगामिनी होकर स्वर्ग में उनकी सेवा करेगी। दूसरों का कहना है, यह केवल कल्पना ही है। कल्पित स्वर्ग में स्त्री-सन्तान लेकर घर-गृहस्थी कोरी कल्पना है। तीसरे का कथन है--मुसलमान राजत्व के समय उनके अत्याचार से नारी-धर्म को बचाने के लिए यह व्यवस्था हुई थी, इत्यादि। दीर्घायु हो पुण्यात्मा के लक्षण हैं।'

'मैं यह बात कैसे मानूँ ?'

'मानना-न-मानना तुम्हारे इच्छाधीन है। कहते हैं, मनुष्य-जन्म श्रेष्ठ है। वह जीवित रहकर भले कामों को कर सकता है, कामों का, कर्तव्यों का अन्त नहीं है, तब दीर्घायु याने ज्यादा दिन जीकर वह अच्छा काम भी कर सकता है। सहज बुद्धि से सोचने पर हम भी समझते हैं कि ईश्वर का दान जो जीवन है, उसे नष्ट करने क

हमें कोई अधिकार तो है ही नहीं, इसके सिवा उनके दान की अवहेलना करना है। साथ ही यह भी हमें स्मरण रखना है कि यदि हम हिन्दू-धर्म मानते हैं, तो जन्मान्तर मानना भी एक ज़रूरी बात है। कौन कह सकता है कि दूसरे जन्म में हमें इससे अधिक दुःख न मिलेगा? यदि इस जन्म में ही दुःख न सह सकेंगे, तो दूसरे जन्म में हम उसे कैसे सहेंगे? जन्मगत संस्कार रहना अस्वाभाविक नहीं है।'

'क्या ये बातें सच हैं बहू?'—इतनी देर के बाद दुर्गा ठकुरानी जैसे सोते-से जागी हों।

'सच है या झूठ, सो तो परमात्मा ही जाने। मुझे तो विश्वास है दीदी। उनकी श्रेष्ठ सृष्टि ही यदि हम हैं, तो हमारी शक्ति भी इतनी छोटी नहीं हो सकती कि दुःख अभाव के निकट सहज ही में हार बैठे।'

'इसके पहले मैंने ऐसा न सुना था बहू, घर-बाहर मुझे धिक्कार से भरी सहानुभूति ही मिली। शर्म, शर्म, मैं कैसे कहूँ कि यह कैसी लज्जा है।'

उनके आँसू पोंछकर प्रतिमा ने कहा—लज्जा, संकोच को हटाकर कर्त्तव्य करते जाओ। और प्रभा, तुम भी सुनो, आज तुम्हारी माँ जैसी दीखती हैं, सदा वे ऐसी न थीं, एक दिन वे भी युवती थीं उनके अंतर में भी प्रेम-प्यार, स्नेह आदि का झरना बहता था। आज उनके हृदय की व्यथा तुम कुछ भी नहीं समझ सकती हो? उनकी मृत्यु ही आज जैसे सबों की कामना की वस्तु हो रही हो, छिः! यह कैसा संकीर्ण विचार, मानव-हृदय का कैसा नग्न रूप है। ऐसी बातों को विचारकर अपने मन को छोटा मत करो। कोई कह ही नहीं सकता, कब किस पर क्या बीतेगी? मैं भली भाँति जानती हूँ। केवल संस्कार-वश ही तुम ऐसा कहती हो। रोओ मत दीदी। जो लोग चले गये, उन्हें तुम्हीं दुनिया में लाई थीं। अपने परम प्रियजनों को क्या तुम मरण-द्वार तक पहुँचा दे सकती हो? नहीं-नहीं', तब अपने ऊपर यह लांछना, घृणा किस लिए? मन जब अधीर हो, तब कोई अच्छी किताब या गीता पढ़ना, शान्ति मिलेगी। मन के प्रश्नों का उत्तर मिल जायगा।'

'भाभी की जैसी बातें। भला कहीं गीता में भी प्रश्न-उत्तर लिखे रहते हैं?'

मुस्कराकर प्रतिमा ने कहा - धीरे धीरे उसे तुम समझोगी। दीदी, धीरज धरो

जो लौटने के नहीं, उनके लिए उतावली मत होओ। किताबों में यदि मन न लगे तो बाहरी कामों की चेष्टा करो। सन्तोष मिलेगा।

'बाहरी काम कैसा ?' – प्रभा ने पूछा।

'चरखा रे चरखा, दीदी के साथ तुम भी निखिल के आश्रम में जाया करो प्रभा।'

'हमें ले चलोगी ?'

निखिल से कहकर सुभीता करा दूँगी। कल से ज़रूर आना। तुमसे बोली तक नहीं, मनि फिर कालेज जाती है न ?'

'उसने पढ़ना छोड़ दिया। मैं कितना कहती हूँ कि एक बार बी० ए० फेल हो गई, तो क्या आ ; पर वह मानती नहीं। मैंने सुना है कि तुम मकान छोड़ रही हो।

हाँ, शाम को चली जाऊँगी।'

'किस मुहल्ले में ?'

'चेतला जा रही हूँ।'

'वहाँ कौन-सा मकान लिया ?

'निखिल के यहाँ।'

'कजरी कहाँ है ?' - मनिका ने पूछा।

'सामान बाँध रही है।'

चारों ओर पिता के कपड़े फैलाकर कजरी उदास-मुख बैठी थी। सरस्वती दूसरे कमरे में सामान बाँध रही थी। वे कजरी के निकट आकर बोलीं—अभी तू बैठी ही है ? जल्दी करो, निखिल आता ही होगा।

'आओ मनि।'—कजरी ने पुकारा।

'चेतला जा रही हो ?'

हाँ, कभी-कभी वहाँ आ जाया करना।'

'बहुत दूर पड़ता है, फिर भी जाऊँगी। बूआ के घर रहोगी ?'

सरस्वती ने उत्तर दिया—तुम सबों को छोड़कर वहाँ जाने से मैं अकेली पड़ गई थी। इन्हें मैं जबरन लिये जाती हूँ।

'कालेज तो दूर पड़ेगा। तू एम० ए० कैसे पढ़ेगी कजरी ?'

'बाबूजी चले गये, अब कैसे पढ़ूँगी — कजरी ने आर्द्र-नेत्र से कहा।

'क्यों, सरोज बाबू न पढ़ायेंगे ?'

'वे भला क्यों पढ़ायेंगे. फिर मैं उनसे सहायता क्यों लेने चली ?'

चपल कण्ठ से मनि ने कहा — वे तेरे 'उड-बो' पति ठहरे ?

कड़ी आवाज़ से कजरी ने कहा — भाई-बहन से शादी की प्रथा हिन्दुओं में नहीं है !

[९]

चेतला के अपने गृह में आये हुए सरस्वती को प्रायः साल-भर के ऊपर हो चुका था।

कल प्रतिमा भी आ गई थी।

प्रतिमा किराये पर छोटे मकान में जाना चाहती थी, परन्तु निखिल तथा सरस्वती ने एक न मानी। एक ही साथ रसोई बनने की व्यवस्था हुई।

कजरी किसी स्कूल में पढ़ाना चाहती थी ; पर निखिल ने कहा—स्कूल से कहीं आश्रम का काम भला होगा। वेतन दिया जायगा। आपत्ति के साथ प्रतिमा ने कहा था, वेतन की आवश्यकता नहीं। वह योंही देख-भाल करेगी। निखिल ने उत्तर दिया— भाई-बहन के बीच में उन्हें बोलने की ज़रूरत ही नहीं। वह तो कजरी को आश्रम की रानी बनाकर लिये जा रहा है, वह और सरोज केवल कजरी बहन के आज्ञानुसार काम करेंगे। निखिल के बर्ताव तथा उसकी बातों से ऐसे दुःख में भी प्रतिमा के चेहरे पर एक हलकी-सी लकीर खिंच गई—तो आज भी वह अकेली नहीं है।

ऊपर-नीचे मिलकर प्रायः पचास कमरे थे। सोने के लिए सब लोग ऊपर जाया करते थे। नीचे रसोई, भण्डार आदि थे।

आश्रम-गृह और भी बढ़ाकर सरोज ने वहीं पर कर्मचारियों के रहने की व्यवस्था कर दी थी।

व्यवस्था एक प्रकार से सभी हुई ; किन्तु पिता की मृत्यु के साथ-ही-साथ कजरी अपनी कार्य-प्रियता खो बैठी। नूतन स्थान में उसे पिता की स्मृति प्रबल पीड़ा देने लगी।

रोते ही रात बिताकर प्रातःकाल उसे झपकी-सी लग गई, आँसू की बूँदें तब

भी उसके गालों पर चमक रही थीं, बिखरे हुए बालों से मुँह का कुछ हिस्सा ढक गया था।

बरामदे से जाते समय, खुली खिड़की में से कजरी पर दृष्टि पड़ने के साथ-ही-साथ सरोज की गति अपने-आप रुक गई। पीछे कबसे सरस्वती खड़ी थीं, यह भी वह न जान सका। सरोज का अभद्र व्यवहार सरस्वती के नेत्रों में केवल अन्याय ही नहीं ; वरन् अपराध-सृष्टि भी कर बैठा।

सरोज !' इसके पहले वैसा कठोर स्वर सरोज ने शायद ही सुना हो।

'माँ !'—दारुण लज्जा से सरोज ने सिर नीचा किया, धिक्कार से अन्तर भर उठा—छिः, चोर की तरह वह यह क्या बक रहा था ; किन्तु तब अनुताप करने के सिवा, कहने के लिए शब्द का एक टुकड़ा भी उसके कण्ठ में नहीं था।

'सरोज, मैं तुम्हें ऐसा नहीं समझती थी ; जाओ, आज से तुम नीचे सोना।'

सरस्वती नीचे उतरीं। माता से निखिल ने पूछा—आज नीचे कमरों की सफ़ाई क्यों हो रही है ? इन कमरों में क्या होगा ?

'तुम और सरोज रहोगे।'

'ऐसा क्यों ?'—वह विस्मित हो रहा था।

'लड़की को ले आई हूँ—उनका मान-अपमान अपने ही का देखना है।'

निखिल हँस पड़ा—अरे, कजरिया के लिए ? घर इसका प्रयोजन ही क्या था ? अपने लड़कों पर क्या इतना-सा भी विश्वास नहीं है ?'

'विश्वास था, और इसी से मैं उन्हें लाई भी ; पर अब अपनी ग़लती पर पछता रही हूँ।

'क्या कह रही हो, क्या हुआ है ?'—निखिल बेचैन हो रहा था।

सरस्वती ने सरोज का बर्ताव बतलाया। कई क्षण के बाद निखिल ने कहा—इसके लिए हमें नीचे उतारने की ज़रूरत नहीं है।

'मैं अब सरोज का विश्वास नहीं कर सकती।'

'उसे भूल मत समझो। तुम नहीं जानतीं, उसका हृदय कैसा उदार है। यद्यपि उसने एक ग़लती कर ही डाली, फिर भी वह क्षमा का पात्र है। वह उसका अपराध नहीं, भूल थी। फिर भी मैं कहूँगा—प्रथम भूल के लिए सारे घर के सामने

उसका सिर नीचा मत करो। सरोज से निडर रहो। वह कजरी को ब्याहना चाहता है।'

'हम क्रिश्चियन तो हैं नहीं कि शादी के पहले प्रेम करना पड़ेगा।'

'डरो मत, विश्वास करो, वह अपराध कभी कर ही नहीं सकता। इतना ज़रूर है कि कजरी को वह बहुत चाहता है।'

'और कजरी ?'

'सो मैं ठीक नहीं जानता। शायद वह भी उसे पसन्द करती है।'

'फिर विवाह कर ही डालो। दोनों की उमर भी तो हुई है।'

'ठहरो मामी, ज़रा सँभल जावें, तब उनसे कहें।'

'प्रतिमा निश्चय सन्तुष्ट होगी। ऐसे जमाई की कामना सभी करते हैं; पर मैं कुछ और ही सोचे हुए थी।'

'क्या माँ ?'

'कजरी को बहू बनाने की आशा में बैठी हूँ, बेटा।'

निखिल हँसी को रोक न सका।

सरस्वती चिढ़ी—झूठ-मूठ हँसता क्यों है ?

'क्या हम मुसलमान हैं, जो भाई-बहन में शादी कर लेंगे ? वह मेरी छोटी बहन है। क्या तुम अपने को केवल मेरी ही माँ समझे बैठी हो ?'

सरस्वती शरमा गई—मुझे वैसी ही बहू ला दे बेटा !

'अच्छा !'—वह तब भी हँस रहा था।

'मैं कजरी के बिना न रह सकूँगी।'

'सरोज से शादी होने के बाद यहीं वह रहेगी।'

दीर्घ श्वास लेकर सरस्वती ने कहा—ऐसी लड़की मिलना कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव भी है। जाने दो। सुन तो, क्या सच-ही तू कजरी को वेतन देगा ?'

'पागल तो नहीं हो गई हो माँ ? भाई बहन को वेतन कैसे दे सकता है ?'

'फिर उस दिन ऐसा क्यों कह रहा था ?'

'मामी और उनकी लड़की कैसी जिद्दी हैं, यह तो जानती ही हो, इसी से उनकी

हाँ-में-हाँ मिलाना पड़ा। धीरज धरो, रुपये-पैसे सब बहन के हाथ में रख देंगे, तब देखेंगे कजरिया क्या करती है।'—निखिल हँसता हुआ बाहर चला गया।

सरस्वती प्रतिमा के निकट जाकर खड़ी हो गई। वह शाक-भाजी काट रही थीं।

'क्या काटें दीदी?'

'यह सब मैं नहीं जानती। बहू कहती थी, हैजा हो रहा है। रसोइया से कह दो, सब सामान ढाँककर रखे।'

नीरेन के दरवान को देखकर सरस्वती और निखिल ने पूछा—सब लोग अच्छे हैं भवानीसिंह?

'जी हाँ, साहब ने भेजा है, हैज़ा जोरों से हो रहा है, सावधानी से रहिएगा, पीने का पानी उबाल लिया जाय।'

भाई अभी उन्हें वैसा ही चाहता है। स्नेह से सरस्वती के नेत्र वाष्पाकुल हुए। वह बोली—हैज़ा क्या ज़्यादा हो रहा है?

'हाँ, माँजी, कल रात में अनुबाबा को दो कै हुई थीं। पड़ोस में कई मरे। बोस साहब की अवस्था खराब है।'

'विनय की? उसे क्या हुआ?'

'रात में हमारे यहाँ बैठे-बैठे उन्हें कै हुई, वे जल्दी घर चले गये। सबेरे पता लगा कि उनकी हालत बिलकुल खराब हो रही है।'

सरस्वती ने निखिल से कहा—वह अकेला है।

'भैयाजी को मत भेजो माँजी। साहब तथा मेम साहब नहीं गये, बीमारी छूत की है। वहाँ जाने से साहब ने सबों को रोक दिया है।'

निखिल ने कहा—मैं जाता हूँ, माँ।

[१०]

केवल सरस्वती को छोड़कर सभी के भोजन हो चुके थे। वे निखिल के लिए बैठी थीं।

'बूआ, एक बजा, भैया अभी तक नहीं आये।' कजरी ने सरस्वती से पूछा।

'मैं भी वही सोच रही हूँ।'

'भैया को टीका लग गया था

'हाँ।'

'क्या विनय बाबू अकेले रहते हैं?'

'अब तो अकेला है। पहले उसके बाप चेतला में उस सामनेवाले मकान में रहते थे। माँ के मरते समय वह छोटा था, बाप ने दूसरी शादी कर ली।'

'उनके पिता कहाँ पर हैं?'

'बर्मा में। लड़के को पूछते तक नहीं।'

'तो विनय बाबू विलायत कैसे गये? वहाँ का खर्च किसने दिया?'

'निखिल और उसके एक मित्र ने मिलकर दिया था।'

'उनकी सेवा अब कौन करेगा?'

'वही तो विचारने की बात है। बाप ऐसा चांडाल है कि टेलीग्राम देने पर भी शायद ही आये।'

'मनि के घर से कोई न जायगा?'

'पगली' सुना, नहीं! भय से कोई गया नहीं।'

'बूआ!'

'क्या कहती है?'

आश्चर्य के साथ सरस्वती ने फिर पूछा—कहो, शरम किस बात की है?

'चलो बूआ, हम सबकी सेवा करें।'—उसने धीरे से कहा।

कई क्षण के बाद सरस्वती ने कहा—तुम्हारा जाना ठीक नहीं; पर अकेले मैं जाकर करूँगी ही क्या? बुढ़ापा आया, फिर भी रोगी की सेवा न कर सकी।

'हमी से क्या सेवा करते बनता है! फिर भी साथ रहने से तुम्हें कुछ सहारा हो जायगा।'

'बारीन की बीमारी के समय तेरी सेवा मैं देख चुकी हूँ। मन-ही-मन आश्चर्य किया करती थी कि यह सब तूने सीखा कब और कैसे? अच्छा चलेगी, तो चल। बहू से पूछ लूँ।'

सरस्वती और कजरी नीचे उतरीं, निखिल भी आ गया। उसने कहा—माँ, विनय की दशा खराब हो रही है, तुम चलो।

कजरी ने पूछा—मैं साथ चलूँ?

'तू कहाँ जायगी ?'

प्रतिमा ने कहा -वह जाना चाहती है, तो लेते जाओ, दीदी को सहारा मिल जायगा। उसे टीका लग गया है।

'अच्छा, तो ज़रूरी सामान साथ में लेती चलो, वहाँ कुछ नहीं मिलेगा, भोजन करने का समय अब नहीं है, यतीश को वहाँ बैठा आया हूँ, कल रात-भर वह विनय के पास था!'

पर्दा हटाकर विनय के कमरे में प्रवेश कर कजरी अवाक् हुई। क़ै और दस्त से बिस्तर भरा हुआ था। आँख बन्द किये विनय ज़मीन पर पड़ा था। इंजेक्शन देकर यतीश हाथ धो रहा था। नई टेबल पर की राशिकृत पुस्तकों की सुन्दर मलाटें धूल से ढँकी हुई थीं। फूटी सुराही के पानी से कमरे का एक कोना भर गया था। कुर्सी पर दवा की शीशियाँ औंधी पड़ी हुई थीं। वह कमरा किसी के रहने का प्रमाण नहीं था। तभी कजरी को याद आई—ये अकेले हैं, सहानुभूति से उसके नेत्र सजल हुए।

'माँ आ गईं निखिल, चलो अब इसे दूसरे कमरे में ले चलें। अरे कजरी देवी! आप भी आईं?'

'घर द्वार की जैसी स्थिति देख रही हूँ, शायद दूसरे कमरे भी रहने योग्य न होंगे। पाँच मिनट ठहरिए, मैं देखे आती हूँ।'

नौकर सब भाग गये थे। केवल एक बालक भृत्य तब भी था। उसी को साथ लेकर वह कमरे की सफ़ाई में लग गई। मैले कपड़ों के ढेर को सामने के दालान में निकाल दिया और बड़े-बड़े ट्रंकों को खींचकर बाहर ले गई। थोड़ी ही देर में कमरे को साफ कर वह सरस्वती को बुला लाई; किन्तु कठिनाई पड़ी बिस्तर के लिए। अपने लिए वह छोटी-छोटी दरी और तकिया लाई थी। कजरी को स्मरण आया कि दूसरे कमरे में उसने रजाई देखी थी, रजाई उठा लाई। टेबल पर से चाभी उठाकर उसने आलमारी खोली; परन्तु चादर के बदले राशिकृत ह्विस्की की बोतलें देखकर वह स्तब्ध हो गई।

'चादर मिली?'

'नहीं!'—उसने जल्दी से आलमारी बन्द कर दी

सबों ने मिलकर अर्द्ध-चेतन विनय को उठाकर ज़मीन के बिस्तर पर सुला दिया।

'अब यह कुछ अच्छा है, अब मैं जाता हूँ।'—यतीश ने कहा।

'कल से आपने कुछ खाया नहीं डाक्टर बाबू, अब देर मत करिये।'

यतीश को अनुभव हुआ—मानो कजरी के कण्ठ से संवेदना, दया, स्नेह के झरने झर रहे हैं।

'सन्ध्या समम आऊँगा, अच्छा नमस्कार!'—वह चला गया।

कजरी नीचे उतरकर सरस्वती के लिए रसोई बनाने लगी। वह रोटी बनाती हुई उस लड़के से पूछती जाती थी, विनय की घर-गृहस्थी की बात। सरस्वती और निखिल को खाने के लिए भेजकर वह विनय के सिरहाने बैठ गई।

विनय ने पानी माँगा।

'अब कैसे हो?'—उसने पूछा।

'जैसी जलन है, वैसी ही प्यास भी।'

विनय उठने की चेष्टा करता हुआ बोला—तुम कौन हो? सामने आओ।

कजरी को पहचानने के साथ-ही-साथ वह अस्फुट ध्वनि कर उठा—कजरी, तुम! तुम! मौत को तुच्छ कर तुम मेरी सेवा करने आई हो। तुम ऐसी हो! असहनीय विस्मय से विनय के नेत्र विस्फारित हुए, वह सोचने लगा—जिससे कभी—मनि की समानता न हुई थी, छोटे-छोटे विषयों पर परिहास एवं व्यंग्य ही चलते थे, जिसके पिता के मरने के बाद भी खबर लेना आवश्यक न समझा गया था, जिसे लेकर मनि के साथ सदा परिहास ही हुआ करता था, आज ऐसे दुर्दिन में सर्वप्रथम वही आई। सबेरे मनि को बुलवाया था, सिर-दर्द के बहाने यहाँ आने से उसने इनकार कर दिया। वह मरने को डरती है। डाक्टर के पूछने पर नौकर ने कहा था—तब वह मोटर पर कहीं जा रही थीं। हाँ, यह बात भली भाँति स्मरण है, नौकर ने यही कहा था। सब कुछ जान-बूझकर भी वह नहीं आई, आई वही—अवहेलना के साथ जिसे दूर हटा रखा था, जीवन तुच्छ कर बिना बुलाये आई वही—सेवा के लिए। क्या यह कहीं स्वप्न तो नहीं है? इसके आगे विनय और कुछ न सोच सकता था।

'मरने से तुम डरती नहीं हो कजरी?'

'मौत कहाँ है ? तुम स्वप्न देख रहे हो। हैजा होने हो से क्या लोग मर जाते हैं ? भैया और बूआ भी आई हैं। उन्हें देखा है ?'

'नहीं।'

'अच्छा, अब सो रहो।'

'कहाँ है नींद ? ऐसी खुशी इसके पहले शायद ही मिली हो। कुछ पहले भी डर रहा था। क्यों, जानती हो ? मरने के लिए नहीं ; इसीलिए कि अकेला मरना पड़ेगा—कोई न था, बूँद-भर पानी के लिए गला सूख रहा था। व्यथा, सहानुभूति, आदर से मेरे नयनों की दृष्टि के लिए जी बेचैन हो रहा था। सबेरे मनि को बुला भेजा था, मारे डर के वह न आई, छूत की बीमारी है। परसों सबेरे से लेकर आधी रात तक वह मेरे साथ थी। और ज़रा कह लेने दो कजरी। हाँ, साथ ही में बाजार से फर्नीचर खरीद लाये थे। साथ खाया था, थिएटर गये थे। हँसी, आदर, सोहाग से वह मुझे ..!'

उत्तजना से विनय को श्वास लेने में कष्ट होने लगा।

'बस करो। उठो मत। यह क्या करते हो ? लो मैं जाती हूँ।'

कजरी का हाथ पकड़कर व्याकुल हो विनय ने कहा—कजरी, मत जाओ, मेरा कोई नहीं है, मैं मर जाऊँगा।

कजरी की व्यथा से भरी दृष्टि ने विनय के हृदय में अपने लिए एक स्थान बना लिया—सदा के लिए।

'मैं कहाँ जाऊँगी ? मनुष्य क्या मनुष्य को इस स्थिति में देखकर भी चला जा सकता है ?'

हताश भाव से विनय ने कजरी का हाथ छोड़कर आँखें बन्द कर लीं। तो केवल एक मनुष्य के नाते यह नारी-सेवा करने आई है ! दूसरों की बीमारी में जैसा करती, बस केवल वही निरा कर्तव्य यह कर रही है। फिर इतना ही क्या उसके लिए यथेष्ट नहीं है ? किन्तु नहीं-नहीं, यह सेवा वह नहीं लेगा। जिसमें बिन्दु-मात्र व्यथा, स्नेह, चाह नहीं है, जो कोरा कर्तव्य, दया से पूर्ण है, वैसी सेवा नहीं लेगा, ले ही नहीं सकता है। ऐसी बातों के विचार से विनय बेचैन हुआ, उसने झुँझलाकर कहा—जाओ, चली जाओ, मैं अकेला मरना चाहता हूँ।

'क्यों ?'--आहत-स्वर से कजरी ने पूछा।

'यह सेवा मैं नहीं ले सकता। मैं क्या, कोई भी नहीं ले सकता। जिसमें ज़रा-सी भी विशेषता नहीं है, दर्द नहीं है, है केवल कर्तव्य, वैसा मैं नहीं चाहता, तुम जाओ, हट जाओ कजरी।'

सावधानी से विनय को लिटाकर, अत्यन्त आदर से उसके सिर पर हाथ फेरती हुई कजरी बोली—तुम जिस सेवा में सुखी हो, वैसी ही सेवा करने के लिए मैं तैयार हूँ; पर बार-बार इस तरह उत्तेजित होने से तुम्हें हानि पहुँचेगी विनु भैया? चुपचाप सो रहो।

'तो फिर तुम इसी तरह मेरे सिर पर हाथ धरे बैठी रहोगी न?'—

एक बच्चे की भाँति मचलता हुआ वह बोला।

'हाँ।'

विनय के ओठों पर हँसी थिरकने लगी।

[११]

सबेरे की निर्मल सफ़ेदी धीरे-धीरे पृथ्वी पर फैल रही थी। आलोक-अन्धकार के मिले हुए रूप में एक मनोरम प्रकाश हो रहा था, मानो उस प्रकाश के आदि और अन्त में आलस्य, जड़ता एवं एक विचित्र उन्माद तथा नशा भरा हुआ था।

खुली खिड़की की राह से उसी अभिनव-प्रकाश की एक झलक विनय की रुग्ण-शय्या पर लोट रही थी।

यम-मानव के अविराम संग्राम में जिस दिन मानव विजयी हुए, उस दिन डाक्टर को लेकर इन चारों के मुँह जय की गौरव-भरी हँसी से खिल उठे। शान्त भाव से विनय सो रहा। खाये बिना निखिल भी बाहर सो रहा। कजरी के निषेध से किसी ने उसे भोजन के लिए नहीं बुलाया। सरस्वती के पूछने पर कजरी ने जवाब दिया—एक दिन भोजन के बिना उन्हें हानि न होगी; परन्तु नींद की ज़रूरत पहले है। दो रात भैया सोये नहीं। तुम भी सो जाओ, मैं बैठती हूँ। विनय के कमरे में एक ओर सरस्वती सो रहीं। विनय के निकट कजरी बैठी। सभी के सोने से इन्हें कौन देखेगा—कजरी ने विचारा। नींद से आँखें झँपने लगीं, उसने पानी से मुँह धोकर किताब

खोली ; परन्तु देर तक वह बैठ न सकी। ज़मीन पर आँचल बिछाकर वह कब सो गई, वह अपने-आप भी न जान सकी।

उसी आलोक-अन्धकार के बीच में विनय जागा। उसे अनुभव होने लगा--मानो महीनों स्वप्न-लोक में विचरकर वह लौट आया हो, एवं क्लान्ति, अवसाद, रोग-यातना उसी लोक में छोड़ आया हो, अब जो कुछ अनुभव हो रहा है, वह है नवजीवन का मधुर, सरस, सुन्दर प्रकाश।

वह धीरे-धीरे बिछौने पर उठ बैठा। रुपहली चाँदनी की भाँति कजरी के स्वप्न से भरे शिथिल शरीर पर उसकी दृष्टि सर्व-प्रथम आकृष्ट हुई। वह आँखें फाड़कर उस सुप्त नारी का अनुपम सौन्दर्य देखने लगा। आज कई दिनों से इसी शान्त मुख को यह देखा करता था। हाँ, वह यही नारी है, जिसके दर्दीले हाथों के स्पर्श से उसकी रोग-यातना कम हो जाया करती थी। अभी तक स्वप्न ही समझे हुए था, वह स्वप्न नहीं, सत्य, वास्तविक रूप में आज आँखों के सामने है। उसे और भी याद आया—इसी रमणी के नेत्रों में उसने कोई ऐसी वस्तु भी देखी थी, जो कि मनि के नेत्रों में कभी न दिखी थी। विनय के हृदय में प्रश्नों की वर्षा होने लगी—वह कहीं विकृत मस्तिष्क की कोरी कल्पना ही तो न थी? स्वप्न तो न था? कल्पना ही सही! स्वप्न होते हुए भी वह स्मृति कैसी मधुर-मोहक है! सुन्दरी मनिका की बगल में इस श्यामाङ्गी तरुणी की कल्पना करते भी अन्तर संकुचित होता है।

कजरी के मुँह की ओर से वह आँखें न फेर सका। अच्छी तरह से दिन निकल आया। वह बैठा ही रह गया।

कजरी जागी। विनय की मुग्ध दृष्टि के सामने उसने सिर नवाया।

'ऐसी बेखबर सो गई, दिन चढ़ गया, तुमने जगाया तक नहीं!'—लज्जा के साथ उसने घड़ी देखी।

'क्यों शर्माती हो? ऐसे भीषण परिश्रम के बाद रेस्ट की ज़रूरत है।'—उसने सहमकर कहा।

'तुम्हें दवा देनी थी।'

'एक दिन ज़रा देर ही से दे दोगी, तो क्या होगा?'

कजरी उठकर खड़ी हो गई। अभी इतनी देर के बाद उसे मालूम हुआ कि विनय के कितने निकट वह सो गई थी। लज्जा से वह सिहर उठी।

उसने सोचा—छिः उन्होंने क्या सोचा होगा?

लज्जा, संकोच, द्विविधा ने उसे सरल व्यवहार करने न दिया, वह भागी।

विनय अवाक् रह गया। जब कि उसके पुकारने पर भी वह न लौटी।

बाली का कटोरा लेकर जब कजरी लौटी, तब वह शान्त थी।

'भागीं क्यों?

'देर हो रही थी; इसलिए चली गई।'

'शायद ऐसा ही हो।'—दीर्घ श्वास की आवाज़ से कजरी लौटी—'नाराज़ तो नहीं हो गये?'

'किसी पर नाराज़ होने का मुझे अधिकार ही कहाँ है कजरी?'

फिर वही अधिकार की बात! कजरी के छोटे-से अन्तर में आँधी बहने लगी। वह सोचने लगी—वही अधिकार लेकर मानाभिमान; किन्तु वे चाहते क्या हैं?

'अधिकार ही क्या, सब कुछ है? ऐसी बात मत सोचा करो। तबीयत बिगड़ जायगी।'

'अच्छा, अब न कहूँगा। अब तो तुम्हारी भागने की पारी है न, कजरी। मैं सोचा करता हूँ, जन्म भर यों ही बीमार पड़ा रहा करता, और तुम मेरे सिरहाने बैठी रहा करतीं। उन दो दिन आगे की तरह, वैसे ही तुम अपने हाथों को मेरे माथे पर फेरा करतीं और मैं उन्हें आदर से अपने हृदय पर रख लेता, वैसे ही।'

इस बार भी कजरी ने वही किया, वह भागी; किन्तु उसके इस पलायन ने इस बार विनय के नेत्रों में दुनिया को सरस, आनन्दमय कर दिया।

एक दिन कजरी ने सरस्वती से कहा—अब घर चलो बूआ।

'विनय और कुछ अच्छा हो जाय।'

'क्या अभी और चार पाँच दिन रहोगी?'

'क्यों, यहाँ कष्ट हो रहा है?'

'नहीं, पर आश्रम कौन देखेगा?'

'अब दो-चार दिन के लिए क्या घबराती हो? हमारे चले जाने से विनय-जैसा असावधान लड़का फिर से बीमार पड़ जायगा। कल ही तो क़ै कर रहा था।'

क़ै की बात से कजरी का मुँह अन्धकार में हो गया। वमन का कारण वह भलीं भाँति जानती थी। कल उसने विनय को बाहर के कमरे में बोतल खोलते देखा था। रोकने की इच्छा होते हुए भी पैर नहीं उठ सके थे। क्यों, सो कौन जाने। यद्यपि विवेक उसके कानों में कह रहा था—भला न किया, मरण-पथ से जिसे लौटाया, उसी पथ पर उसे अग्रसर होने देना उचित नहीं किया। उसने अपने-आपको उत्तर दिया था – उन्हें रोकने का मुझे कोई अधिकार ही नहीं है। विवेक ने फिर आँखें बतलाईं—क्या सच नहीं है? मनुष्य मनुष्य को सत्य-पथ में न लायेगा, तो कौन लायेगा? क्या वह अधिकार भी कोई माँगने की वस्तु है? इस बार कजरी ने सोचा, मैं उन्हें अवश्य रोकूँगी।

अच्छा होने के साथ-ही-साथ घर-गृहस्थी की नव-श्री देखकर विनय पुलकित हुआ। बैठने का कमरा अब पूर्व की भाँति नहीं था। साफ़-सुथरे टेबल-कुर्सी यथा-स्थान पर रखे हुए थे। सोने के कमरे से लेकर स्नान का कमरा तक सुगृहिणी के हाथ के स्नेह स्पर्श से सजीव-सुन्दर हो रहे थे।

विनय की दुनिया थी विलासिता के अन्दर। वहीं उसने नारी को देखा था, एवं उसकी कामना की सीमा भी उतनी ही थी।

घर और बाहर नारी का वास्तविक रूप उसने प्रथम बार देखा। एक दिन निखिल के आश्रम में मज़दूरों के सामने, इसी कजरी की सौम्य मूर्ति एक प्रौढ़ रूप में देखी थी. हँसी-खेल के बीच में इसकी चपल, चंचल, बालिका-मूर्ति देखी थी, फिर घर-गृहस्थी के बीच में रोगी के सिरहाने का इसी का पूर्ण रूप देखकर वह विस्मित एवं मुग्ध हुआ।

कजरी जब उनके सामने आई, तब वह उसी की बात सोच रहा था।

'तुम उस कमरे में जाओ, इसे मैं साफ़ करूँगी।'

'क्या मेरे रहने से कुछ हानि होगी?'

कुछ सोचकर कजरी ने उत्तर दिया—हाँ, चाभी देते जाना।

इतने दिनों तक चाभी कजरी के पास थी। दो दिन पहले विनय ने माँग ली थी।

'रिंग की वह चाभी क्यों खोल रहे हो?'

'कहाँ?'—विनय सहम गया। वह उससे छिपाकर ही वह काम करना चाहता था।

'मुझे आलमारी की चाभी ही चाहिए।'

'उस चाभी से क्या करोगी ? आलमारी में केवल काग़ज़ ही भरे हैं।'

'उन्हें फेंक दूँगी ?'

'काग़जों को ?'

'नहीं, बोतलों को।'

'बोतल ? क्या इसके पहले तुमने आलमारी खोली थी ?'—अत्यन्त आश्चर्य के साथ उसने पूछा।

'कई बार। शराब पीना छोड़ दो।'

'क्या शराब पीना खराब है, कजरी ?'

कुछ देर तक कजरी चुपचाप उसका मुँह निहारती रही। क्या ये पागल तो नहीं हो गये हैं ? इतना भी नहीं जानते !—तुम कुछ भी नहीं जानते। मादक मात्र ही खराब होता है।

'क्या सचमुच ! अच्छा, ऐसा क्यों ?' परम कौतुक के साथ विनय ने पूछा।

'मादक के नशे में आदमी जीवन के उद्देश्य को खो बैठता है, अँधेरे में भटकता फिरता है। मादक मन को उन्मत्त, संकीर्ण, दुर्बल कर देता है। बोध की शक्ति जाती रहती है, उत्तेजना-वश वह नीच-से-नीच काम करता है। कहाँ तक कहूँ ?'

'यदि तुम्हारी सभी बातें मान ली जायँ, फिर भी इससे मुझे हानि ही क्या है, कजरी ?'

'हानि नहीं है ? क्या कहते हो विनु भैया ? छिः, जो आदमी है वह किरा लिए और क्यों नशे की वश्यता स्वीकार करेगा ?'

'किन्तु यदि मैं आदमी ही न होऊँ ?'

'कैसी बातें करते हो ?'—कजरी हँस पड़ी।

'सभी मनुष्यों में क्या मनुष्यत्व रहता है ? मैं अपने को मनुष्य नहीं समझता।'

'चुप भी रहो। इन बातों को मन से निकाल दो। जिस दिन तुम पृथ्वी में अपना वास्तविक अधिकार का दावा लेकर खड़े हो जाओगे, एकान्त भाव से उसे माँगोगे, उस दिन वास्तविक मनुष्यत्व का विकास अपने-आप हो जायगा। उस समय मन में जो सच्ची प्रेरणा आयेगी, उसके निकट तुमको मनुष्यत्व स्वीकार करना पड़ेगा।'

अपलक नेत्रों से कई क्षण उसे देखने के बाद विनय ने कहा--विश्वास करो कजरी, वह समय मेरे लिए न आयेगा, तो शराब से हानि ही क्या है ?

'यदि यह बात मान भी ली जाय, फिर भी दूसरी बात उठती है। अपने ऊपर तुम अविचार कर सकते हो ; परन्तु सन्तान पर कैसे करोगे ? सब बातों को टालने के बाद भी वह प्रधान बात नहीं टल सकती है, तुम पिता की जाति होकर एक अनिष्टकर दृष्टान्त बच्चों के सामने कैसे रखोगे ? शराबी पिता से शायद ही लड़के श्रद्धा-भक्ति कर सकें। कल तुमने जो कुछ किया था, उसे क्या कह सकते हैं ?'

'तो तुम ठीक किये बठो हो कि मैं शादी अवश्य करूँगा ?'

'निश्चय।'

'क्या तुम्हारा विचार भूल नहीं सकता ?'

कजरी आश्चर्य में हुई ये कहते क्या हैं ? वह सोचने लगी—विवाह की सभी बातें हो चुकी हैं। दो महीने के बाद मनिका इस घर की गृहिणी बन बैठेगी। भाग्य-वती मनिका !

'चाभी दो।' उसने झुँझलाकर कहा।

'इतने दिनों का नशा कुछ एक ही दिन में नहीं छूट सकता है। जब कभी शराब पीने की इच्छा होगी, इसी तरह उस प्रलोभन से मुझे खींच लायेगी न कजरी, कजरी कहो, कहो।' वह कजरी के पास जाकर खड़ा हो गया।

कजरी ज़रा हटी इसके बाद मनि तुम्हें रोकेगी।

हाथों से मुँह ढाँपकर विनय ज़म'न पर बैठ गया। कजरी घबराई।

कुछ देर के बाद विनय शान्त हुआ।

'क्या हो गया था ?'

'कुछ नहीं कजरी, यों ही चक्कर आ गया।'

'अरे सबेरे से दवा ज्यों-की-त्यों गिलास में रखी है, पी नहीं ?'

'पी ली है।'

'और वह क्या रखी हुई है ? तुम बहुत भूलते हो, न-जाने अकेले कैसे रहते हो ?'

'इसके पहले इस तरह व्यथा-सहानुभूति लेकर मेरे पास कोई नहीं आया था कजरी।'

'अच्छा, अच्छा, लो अब दवा पी लो।'

'और भी कोई आदेश है?'

'चाभी न दोगे?'

'यदि न दूँ?'

कजरी चिढ़ी—अच्छा, मत दो।

'सुनो तो सही, सच कहना कजरी, यदि शराब न पीऊँ, तो क्या तुम खुश होगी?'

'हाँ, हाँ, अब दे दो।'

कजरी ने आलमारी खोलकर सभी बोतलें फेंक दी। आनन्द के साथ विनय उसका काम देखता रहा।

'अब तो किसी दिन नहीं पिओगे?'

'कोशिश करूँगा।'

'अब उस नौकर को निकाल दो।'

'क्यों कजरी?'

'वह फिर ले आयेगा।'

'क्या दूसरा नौकर न ला सकेगा?'—विनय मुस्करा रहा था।

'सो भी ठीक है।'—कजरी को चिन्तित होते देखकर विनय हँसने लगा। उसे हँसते देखकर कजरी चिढ़ी तो अवश्य; पर दूसरे ही क्षण वह भी हँस पड़ी।

[१२]

कजरी को चेतला में लौटे कई दिन व्यतीत हो चुके थे। कजरी का अनाग्रह-भाव देखकर भी विनय अधिकांश समय चेतला में व्यतीत करने लगा, एवं कजरी को सहायता देते समय उसके कामों में सुविधा के बदले असुविधा की सृष्टि करने लगा।

उस दिन जब कजरी सूत में नम्बर डालती हुई, उन्हें रस्सी की अलगनी पर टाँग रही थी, तब भी विनय के अनभ्यस्त अनाड़ी हाथ कजरी को सहायता देने से विमुख न थे।

हँसती हुई कजरी बोली—यह हो क्या रहा है?

'सूत में नम्बर डाल रहा हूँ।'—अत्यन्त गम्भीर मुख से उसने उत्तर दिया।

'यह क्या तीस नम्बर का सूत है ?'—हँसी से कजरी के नेत्र चमक रहे थे।

'निश्चय।'

'रख दो, अरे, सभी में तीस नम्बर डाल दिये! ध्यान से देखो, यह बीस, वह तीस, चालीस, यह दस, अब समझे ?'

'कैसी मुश्किल में पड़ गया, अरे भाई, मिला भी तो लो।'

'क्या मिलाऊँ ? नहीं, तुमसे मैं हार गई, अच्छा कुछ देर तक बैठकर काम देखो।'

'सबेरे से काम करते-करते तुम थक गई हो, मुझे हेल्प (सहायता) करने दो कजरी !'

'माँ, यहाँ आकर देखो, मिस्टर बोस सूत लिये कैसे मजे में बैठे हैं और कई दिनों से हम इन्हें ढूँढ़-ढूँढ़कर हैरान हो रहे हैं।'—मनिका ने माँ को पुकारकर कहा।

मनिका तथा नीरोजा खड़ी ही रह गईं, मानो ऐसा विस्मय उन्होंने अपने जीवन में पहले-पहल देखा हो। उनकी वह अद्भुत मुद्रा देखकर कजरी की हँसी न रुकी।

'काकी, मनिका, बहुत दिनों में आईं, बूआ के पास चलिए।'

नीरोजा ने विनय से कहा—तुम्हारी बीमारी की खबर सुनकर कैसे कष्ट से मेरे दिन कटे, सो परमात्मा ही जानते हैं, अब अच्छे हो न!'

पहली त्रुटि नीरेन ने सुधार ली—मैं तो ऐसी दिक्कत में पड़ गया, जिससे छुटकारा ही न मिला। जानते ही हो, स्त्रियाँ थोड़े ही में घबड़ा जाती हैं। तुम बीमार क्या पड़े, मनि के सिर पर पहाड़-सा टूट पड़ा, सिर के दर्द से वह बेचैन हो गई। आज दो दिन अच्छे होते न होते जिद्द कर बैठी, चली मिस्टर बोस के घर। इधर मेरी तबीयत ठीक नहीं, उसकी माँ का हाल जानते ही हो, उस बेचारी की तो सदा कोलिक पेन और मारफिया इंजेक्शन से छुट्टी नहीं। कल तुम्हारे घर गया था। नौकर ने कहा – तुम चेतला में मिलोगे।

कजरी विस्मय के साथ इस मिथ्या को सुन रही थी। घृणा से विनय संकुचित हुआ, मन में पहला प्रश्न यही उठा कि इन्हीं पिता-माता की कन्या तो मनिका भी है ?

'क्या ज्यादा बीमार हो गये थे ?'

'यदि बूआ न जातीं तो शायद ही बचता।'

'ऐसा! और हमें खबर तक न दी? अच्छे हो गये इतना बहुत है। तुम्हारी बूआ आ गई थीं, सो अच्छा हो हुआ। इस रोग में आत्मीय के सिवा दूसरे सेवा करने में डरते भी तो हैं।'

'जब बूआ, निखिल और कजरी को मैंने देखा, तो मेरे आश्चर्य का कहीं ठिकाना न रहा। कह नहीं सकता कि इन्होंने मेरी कैसी सेवा की।'

'पिता के मरने के बाद से तो कजरी बाहर जाती ही नहीं।'—ये शब्द मनिका के थे।

विनय ने उत्तर दिया—आप भूल कर रही हैं, मिस मिटर! वह आमोद करने नहीं गई थीं, गई थीं असहाय की सेवा करने। यद्यपि इस तरह एक अनात्मीय के लिए इन्हें अपना जीवन विपन्न करना अनुचित था, फिर भी ये गईं, मुश्किल तो इस बात की है कि सभी के मन एक से नहीं होते।

'तुम सब बैठो, मैं अभी लौटूँगा।'—कहकर नीरेन चले गये

नीरोजा ने कहा कालिका ने तो मुझे पागल बना दिया, इसके लिए मैं विनय को एक बार देखने तक न जा सकी, मैं प्रतिमा से मिलने जाती हूँ।

'मैं आवक् हूँ मिस्टर बोस, आखिर आप भी चरखे के भक्त बन बैठे? कचहरी जाना भी छोड़ दिया।'— नीरोज के जाने के बाद मनि ने पूछा।

'तबीयत ठीक न होने से कब जाता?'

'बैठे-बैठे सूत के नम्बर लगाने से तबीयत ठीक हो जायगी? अभी खुली हवा की ज़रूरत है।'

'मेरे विचार से—मुक्त-वायु से कहीं हज़ार गुना इस कमरे की हवा अच्छी है। तुम क्या समझती हो कजरी?'

ऐसे प्रश्न के लिए कजरी प्रस्तुत नहीं थी। 'बीमारी के बाद वायु-परिवर्तन ठीक है।'—उसने संकोच के साथ कहा।

'चारों ओर मैदान-ही-मैदान है। इसे भी क्या बन्द जगह कहना चाहती हो?'

'निश्चय नहीं; पर आपको तो घर ही में देख रही हूँ। शायद अब आपको इस कमरे के सिवा और कहीं भला न लगता हो।'

'आपका अनुमान ठीक है।'—अनमने भाव से विनय ने जवाब दिया।

इनकी बातों का प्रच्छन्न इंगित कजरी को गढ़ रहा था। प्रसंग-परिवर्तन की इच्छा से उसने कहा—मनि, देखा नहीं, बिनु भैया खद्दर पहना करते हैं?'

'आप धोती भी पहनने लगे? सर्वनाश! सभी कपड़े खादी के हैं।'— मनि पीछे हट गई।

विनय शर्माया—देशी वस्तु खराब नहीं होती। फिर इनकी तुष्टि के लिए मैं सब-कुछ करने को तैयार हूँ। आप भूली न होंगी कि कजरी ही ने मुझे मरने से बचाया।

बाहर से यतीश की आवाज़ सुन पड़ी—मैं तो गर्व समझता हूँ विनय! हमारी माँ-बहनों के हाथ की देश की बनी सुई वस्तु व्यवहार करने में गर्व तो है ही, इसके सिवा तृप्ति, सन्तोष, सान्त्वना जो है, उसकी भी कहीं तुलना है? अपने-आप पर निर्भर रहना गर्व है, सार्थकता है, मनुष्यत्व का यथार्थ प्रकाश है।

डाक्टर के खद्दर के कोट-पैण्ट की ओर देखकर घृणा से मनि ने कहा—आपसे मैं सहमत नहीं हो सकती डाक्टर। इस समय युग में हमें व्यवहार करने के लिए सुन्दर वस्तुएँ हैं। इन खराब कपड़ों से न तो पुरुष और न स्त्रियाँ ही भली लग सकती हैं।

'आप जिसे भोंडा और खराब कह रही हैं, उन्हें आदर और सन्तोष के साथ वे नर-नारियाँ भी अपना रही हैं, जिन्होंने पहले सिल्क के सिवा दूसरे कपड़े छुये तक न थे। केवल यही नहीं—आज वे देश के अभाव, दुःख, व्यथा को दर्द के साथ समझने भी लगे हैं। सभी के मत एक-से नहीं होते, मैं आपकी निन्दा नहीं करता, पहले मैं भी ऐसा था; किन्तु कजरी देवी ने न-जाने कब और कैसे मेरे उन विचारों को बदल दिया। सुनता हूँ पारस पत्थर के स्पर्श से लोहा भी सोना हो जाता है। फिर यह कहना भूल न होगी कि हम पर भी उसी पारस का प्रभाव पड़ गया।

'मैं भी तो नहीं बचा डाक्टर!'—विनय ने कहा।

'यह दो दिन की उत्तेजना जैसी अचानक आई है, चली भी वैसी ही जायगी।'—मनिका उत्तेजित हो रही थी।

'हो सकता है। सरोज कैसा है?'

'कल वे अच्छे थे, आज बुखार है।'

'उसे सावधानी से रखना चाहिए, उसकी अवस्था खराब है। चलिए देख आवें।'

'मैं भी चलती हूँ, जानती न थी कि वे बीमार हैं।'

'सब अच्छे हैं न, मिस मिटर ?'—यतीश ने पूछा।

'कहाँ ! माँ सदा बीमार रहती हैं।'

'उन्हें क्या बीमारी है ? अरे हाँ, वही कालिक।'

'डाक्टर मुस्करा रहा था तो मार्फिया इंजेक्शन चालू भी होगा।'

'आपके डाक्टरी में इसकी दवा कहाँ है ?'

'ठीक है। मिसेज़ मिटर की बीमारी की दवा हमारी किताबों में नहीं है। आप भी तो बीमार रहती हैं, मिस्टर मिटर कह रहे थे।'

'हाँ।'

'तो मार्फिया शुरू कर दीजिए। वैसा सत् दृष्टान्त, हाँ मैं कहता था, उसके सिवा इलाज ही नहीं।'

'आप क्या कहते हैं ?'—मनिका का स्वर कठोर था।

'कह रहा था, वह बीमारी वंशगत है।'—लापरवाही के साथ डाक्टर ने कहा।

मनि की समझ में नहीं आया कि डाक्टर सच ही कह रहा है या व्यंग्य कर रहा है।

'भाग्य से मार्फिया की आमदनी हुई थी, तभी तो आप जैसे मरीज़ तकलीफ़ से बचे। फिर आप भी ले रहे हैं।'

'हाँ, पर ज्यादा नहीं।'

कजरी झुँझला पड़ी—आप खड़े-खड़े बका ही करेंगे या उन्हें देखने भी चलेंगे ? देखिए तो कितना काम पड़ा है।

'अरे बाप रे ! सभी अपनी-अपनी धुन में पड़े हैं। केवल काम और काम ! दुनियाँ की किसी वस्तु से इन्हें सम्बन्ध ही नहीं।'

मनिका का हृदय जब पराजय की वेदना से व्याकुल हो रहा था, ठीक उसी समय नीरोजा की उद्वेग-आशंका दूर होकर अन्तःकरण शान्त हो रहा था।

नीरोजा ने सरस्वती से पूछा—सरोज के साथ कजरी की शादी तय पा चुकी है ?

'हाँ, पर अभी तो वह बीमार है।'

'विवाह में कजरी का मत है?'

'पूछा नहीं।'

'और सरोज का?'

'वह उसे सिर चढ़ाकर रखेगा बहू!'

यद्यपि ये बातें नीरोजा के मनोनुकूल नहीं हुईं, तथापि उसने आराम की साँस ली : क्योंकि विनय के लिए उसे भय था।

'सरोज को क्या बीमारी है?'

'यतीश सन्देह कर रहा है प्लूरसी का, कल दूसरे डाक्टर भी आवेंगे।'

'वे कहाँ गये? मुझे कालिक जैसा लग रहा है?'

'पहले तो कालिक नहीं था।'

'आज दो साल से मैं इसी दर्द से हैरान हूँ। काम नहीं होता। घर-गृहस्थी देखने के लिए पचास रुपये महीने पर रूबी को रखना पड़ा।'

'अब गृहस्थी रूबी देखती है?'

'हाँ, वे कहते हैं—सब धन्धे अपने को करना चाहिए, आज-कल यही एक फैशन-सा निकला है न कि अपने हाथ से काम करो; पर अपना दुःख दूसरा क्या समझे, मैं कालिक के मारे मारी जाती हूँ, काम की कौन कहे।'

'ठीक है, पर पचास रुपये हर महीने में देना ज़्यादा है।'

'क्या करूँ दीदी, यह बड़ा खराब रोग है, कभी-कभी तो चिल्लाते ही रात बीत जाती है। वे चिढ़ते हैं, कहते हैं—सोने नहीं पाता, फिर कैसे करूँ, कुछ अपने हाथ की तो बात है नहीं, वे कहाँ गये, मुझे दर्द हो रहा है।'

नीरोजा चली गई।

[१३]

सरोज के शव की नाईं विवर्ण मुख की ओर कजरी की दृष्टि पड़ी, वह सिहर उठी। वह समझ ही न सकी कि रात-भर में उसका चेहरा कैसे बदल गया।

'तबीयत क्या ज़्यादा खराब लग रही है?'—चाय छानना बन्द करके उसने पूछा।

'नहीं।'

सरोज ने मुँह फेर लिया। वह तरुणी की तीक्ष्ण दृष्टि से अपने को छिपाना चाहता था – 'तो क्या हुआ है?'

प्रबल आपत्ति के साथ सरोज ने कहा – कैसी मुश्किल की बात है, मुझे कुछ भी नहीं हुआ।

'चाय पी लो।'

'कई दिनों से मैं आश्रम में नहीं गया। निखिल तो खादी का प्रचार करने में लगा हुआ है, तुम्हें ज़्यादा परिश्रम होता होगा कजरी!'

'तुम जानते नहीं हो क्या? विनु भैया रोज आते हैं और मुझे सहायता भी करते हैं।'

'ऐसी कृपा क्यों?'

'वे कहते हैं, तुम्हें ज़्यादा परिश्रम होगा! अरे-अरे सरोज भैया, भैया मेरे, तुम्हें क्या हो गया!'– कजरी चिल्लाने लगी। सबों ने मिलकर उसे बिछौने पर सुला दिया।'

'यतीश और निखिल को बुलवा ले कजरी!'—सरस्वती ने कहा।

'डाक्टर बाबू को फोन कर दिया है, भैया यहाँ कहाँ हैं?'

'निखिल कहाँ गया?'

'भूल गईं? सबेरे वे तुमसे कहकर तो गये थे, अभी लौटने में देर लगेगी।'

कुछ देर के बाद सरोज ने आँखें खोलीं। धीरे से उसने कहा—मुझे चक्कर आ गया था। माँ, घबराओ मत।

यतीश भी पहुँच गया। सरोज को ज़ोर से ज्वर आ गया। निखिल के पास तार गया।

घर जाते समय डाक्टर ने कहा कि रात को वहीं रहेगा।

'कजरी!' बहुत धीरे से सरोज ने पुकारा। उस समय वहाँ केवल कजरी ही थी।

'हाँ!' ओडिक्लोन की पट्टी बदलकर कजरी ने उत्तर दिया।

'यह दर्द अब नहीं सहन होता।'

'मैं हाथ फेर दूँ, भैया! अच्छा देती हूँ।'—अपने माथे पर का कजरी का हाथ उसने अपने हाथ पर उठा लिया।

'क्या है भैया?'

'भैया-भैया मत कहो, मैं सुन नहीं सकता।' कजरी अवाक रही।

'समझी, मैं भैया शब्द सुन नहीं सकता, सह नहीं सकता।'

इस बार भी कजरी उत्तर नहीं दे सकी।

'क्या तुम बहरी हो? भैया नहीं, तुम मेरी पत्नी, मेरी सहधर्मिणी हो।'

हाथ खींचकर वह विरक्ति के साथ बोली—जिन्हें बचपन से मैं भाई के समान मानती हूं, जानती हूं, उन्हें—छिः-छिः, यह सब क्या है?

'जाओ मत कजरी, सुनो...तुम, हाँ तुम्हीं मेरी जन्म-जन्मान्तर की स्त्री हो। बचपन से मैं तुम्हें चाहता हूँ।'

'जानती हूँ भैया; किन्तु वह पति का प्रेम नहीं, वह है भाई का पावन स्नेह।'

'नहीं-नहीं, यह भूल है।'

दीप्त कण्ठ से कजरी ने पुकारा—सरोज भैया!

कजरी के कण्ठ की परिस्फुट घृणा ने सरोज को व्याकुल कर दिया। हाथों से मुंह ढाककर आतुर स्वर से वह बोला—जाओ, चली जाओ, मेरे सामने अब मत आना।

सरोज के बर्ताव से कजरी शंकित हुई। उसे भय हुआ, कहीं सरोज को डिलीरियम तो नहीं हो गया है?

'भैया, शान्त होओ, ऐसी बातें मत सोचो।'

'जाओ, जाओ, तुम मेरे सामने से हट जाओ।'

संध्या-समय सरोज कुछ अच्छा रहा और रात को सरस्वती उसके निकट रही।

आधी रात के समय वह अस्थिरता के साथ उठ बैठा और पुकारने लगा—माँ, माँ!

'क्या है बेटा?'

'इस कमरे के सब खिड़की-दर्वाज़े खोल दो, और उसे बुलाओ।'

'किसे, यतीश को?'

'नहीं-नहीं, उसे...कजरी को।'

सरोज हाँफ रहा था। कजरी उसके निकट आकर खड़ी हो गई। 'भैया!'—उसकी आवाज़ व्यथा से कोमल थी।

समग्र शक्ति एकत्रित करके सरोज ने कजरी का हाथ पकड़ लिया—कहो, तुम मेरी पत्नी हो?

'नहीं।'

विमूढ़ भाव से सरस्वती सरोज की बगल में बैठ गई और उसे साहस देती हुई बोली—घबरा मत बेटा, वह तेरी ही सहधर्मिणी है। अच्छे तो हो जाओ, शादी कर दूँगी।

सरोज बिछौने पर गिर पड़ा।

उसके आतुर स्वर ने कजरी को जाने से रोक लिया - अच्छा, ऐसी ही सही।

कजरी लौटी—भैया मेरे!

'चुप-चुप, तुम चली जाओ।'

ऐसा विस्मय, ऐसा भयानक मुहूर्त्त कजरी के जीवन में प्रथम बार आया था। उस समय कोई बात भली भाँति समझने की शक्ति तक उसमें नहीं थी। उसके पैर न उठे। वह काँपने लगी।

सरोज फिर उठा। उसने कहा— अभी तक तुम गईं नहीं? जाओ, कजरी, सामने से हट जाओ। किन्तु दूसरे ही क्षण वह चिल्लाने लगा—कजरी, मत जाओ, मैं मर जाऊँगा। कहती जाओ, तुम मेरी पत्नी, मेरी सहधर्मिणी हो। तुम दूसरे की होकर रहोगी, यह मैं मरने के बाद भी सह न सकूँगा। मेरी इस मरन-सेज पर हाथ धरकर कहो कि तुम मेरी पत्नी हो और मेरे मरने के बाद दूसरे से ब्याह न करोगी।

'बेटा, घबराओ मत, वह तेरी है।'

'माँ, कहो, उससे कहने के लिए कहो।'

सरस्वती ने न तो सब बातें भली भाँति सुनीं और न कुछ विचारकर ही देखीं। उस समय सरस्वती के मन में यही बात आई कि कजरी से तो सरोज की शादी होगी ही, फिर आज उस बात को स्वीकार करने में हानि ही क्या है। एवं इसमें अप-

राध की भी कोई बात नहीं है ; वरन् इससे उसे सन्तोष मिलेगा, बीमारी घट जायगी। कजरी की ओर से वे अन्धी ही बनी रह गईं।

उन्होंने कहा—कहो बेटी, स्वामी की ऐसी स्थिति में स्त्री की लज्जा शोभा नहीं पाती। जो कुछ कहने के लिए कहता है, सो कह दो, शर्माओ मत।

'मुझे आराम-सन्तोष के साथ जाने दे कजरी !'—सरोज को श्वास लेने में कष्ट हो रहा था।

'उन बातों से क्या तुम्हें सन्तोष मिलेगा भैया !'

'हाँ, तुम दूसरे की पत्नी होगी, यह मैं सह नहीं सकता और मरने के पीछे भी न सह सकूँगा। जानता हूँ कि उस समय तुम मुझे एक स्वार्थी के रूप में स्मरण करोगी और यह भी जानता हूँ कि तुम मुझे नहीं, विनय को···'

'ज़्यादा मत बोलो बेटा, हाँफ रहे हो। कजरी, कह दो वह क्या कहने के लिए कह रहा है।'

'मैं तुम्हें वचन देती हूँ भैया !'

'भैया नहीं, तुम मेरी पत्नी हो, कहो कजरी !'

दृढ़ता के साथ कजरी ने कहा—नहीं, नहीं।

'फिर अभी किस बात का वचन दे रही थीं ?'—वह व्याकुल हो रहा था।

'मैं क्वाँरी ही रहूँगी।'

सरोज ने परम निश्चिन्तता की साँस खींची। इसके बाद वह बिछौने पर गिर पड़ा।

सरस्वती चिल्लाने लगी।

यतीश को पुकारने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

प्रतिमा भी आ गई।

सरोज की नब्ज देखकर यतीश ने कजरी से कहा—माँ को दूसरे कमरे में ले जाइए।

कजरी के भाव-शून्य मुँह की ओर देखकर डाक्टर ने फिर पुकारा—कजरी, देखो !

'कहिए !'—सहमकर कजरी ने पूछा।

उस जड़ता-हीन आवाज़ को सुनकर यतीश विस्मित हुआ।

[१४]

सरोज की मृत्यु के बाद कई महीने व्यतीत हो चुके थे।

एक दिन एकान्त में कजरी ने माता से कहा—ऐसा मत करो।

'क्या ?

'वही, ब्याह।'

'शादी तो करनी है ही और तू छोटी भी नहीं है।'

'शादी से क्या करना है, अच्छी तो हूँ माँ !'

'क्या बकती है कजरी ?

'सचमुच माँ की जाति बड़ी कठोर होती है, मुझे बिदा करने से तुम्हें क्या लाभ होगा ?'

'स्नेह के ऊपर और भी कुछ है कजरी, जिसे कर्त्तव्य कहते हैं। भूल मत समझो। सन्तान को दूर हटाने में क्या माँ व्यथा नहीं पाती ; किन्तु माँ अपने स्वार्थ और दुर्बलता से सन्तान की भलाई ही कहीं ज़्यादा देखती है।'

'इसमें कौन-सी भलाई है ?'

'सभी बातों का एक समय है बेटी। आदमी के जीवन में एक ऐसा समय आता है, जब कि वह प्रेम को अपने ही भीतर नहीं रख सकता। जिस दिन उसके अणु-परमाणु में पूर्णता प्राप्त होती है, उस दिन वह अपने प्रेम को उपभोग करना चाहता है, साथी चाहता है। प्रकृति के नियमों को दमन करना असम्भव न होने पर भी कष्टकर तो अवश्य ही है। नारी-जीवन को पूर्णता प्राप्त होती है—विवाह के बाद, सहधर्मिणी के रूप में। बाहर-भीतर हज़ार काम करो बेटी ; किन्तु फिर भी नारी उससे तृप्त नहीं होती। उसे वास्तविक सन्तोष तभी मिलता है, जब कि वह पति के संसार में रानी बनकर बैठ जाती है एवं उसका नारीत्व चरितार्थ होता है—पति के श्रेष्ठ दान—बच्चे को गोद में पाकर, माँ के पावन रूप में जगत् के हाथ में अपने को सौंपने में आनन्द अवश्य है ; किन्तु कुमारी-जीवन में ऐसा समय भी आ जाता है, जब कि उसे अतीत के लिए केवल हाहाकार ही करना पड़ता है। माँ सन्तान को पूर्णता देना चाहती है।'

'यदि अपने से पति के मत की समता न हुई तो ?'

'ज़्यादा उमर में शादी होने से एक मत न होना ही स्वाभाविक है, बीस बाईस साल तक वह पिता के घर की रीति-नीति में अभ्यस्त हो जाती है और एक स्वतन्त्र मत को भी अपना लेती है। पति के घर में उसे निराला और नूतन जीवन आरम्भ करने में बहुत कुछ त्यागना भी पड़ता है। जब स्वामी और उनके परिवार के लिए उसे त्यागना पड़ता है, तब यदि पति उसके लिए कुछ भी त्याग न करे, तो वह स्थिति दुःखदायी ज़रूर है; परन्तु नारी का त्याग ही उसका श्रेष्ठ गौरव और वास्तविक सौन्दर्य है।

'पुराकाल से हिन्दुस्तान नारी के त्याग की महिमा में महिमान्वित होता चला आ रहा है। मेरे विचार से—कैसी भी भयानक स्थिति क्यों न हो; पर नारी अपने स्थान से हट नहीं सकती।'

'इतने दिनों का अभ्यास कोई एक दिन में कैसे छोड़ सकता है? तिसपर पुरुष उसके लिए अपनी आदत, आराम, सुख-स्वच्छन्दता में ज़रा-सा भी परिवर्तन न करेगा, हर बातों में मतान्तर होता रहेगा। वही प्रभुत्व का बर्ताव, वे ही टीका-टिप्पणियाँ उन सबों को वह कैसे सह लेगी?'

'वह सब कुछ सहन कर लेगी। पति के प्रेम-स्नेह का क्या कुछ भी मोल नहीं है, कजरी! स्नेह के लिए सब प्रकार के अत्याचारों को नीरव, हँसमुख से सहन कर लेना एक सहज बात है। तुम्हारे पिता दूसरे मत के होते हुए भी, उनके स्नेह ने मुझपर जय पा ली थी। वे स्वार्थी नहीं थे।'

'यदि वे स्वार्थी होते और तुम्हारे सुख सुभीते पर ध्यान न देते, तो क्या करती माँ?'

'जब वैसा हुआ नहीं, तब कैसे कहूँ कि क्या करती। शायद नारी के त्याग ही को कोई आदर्श मानती; किन्तु नहीं—त्याग का महत्त्व चाहे कैसा महत् क्यों न हो; पर आत्मसम्मान भी कोई मूल्यवान् वस्तु है। मैं अब बक नहीं सकती कजरी! कहती थी—तुम्हें इन बातों का डर नहीं है। मैं जानती हूँ कि विनय का प्रेम मौखिक नहीं है। अब तुम छोटी नहीं हो, इसलिए तुम्हारा मत लेना भी आवश्यक है।'

'यों ही मेरी ज़िन्दगी भली भाँति कट जायगी। तुम विश्वास करो माँ, मैं कभी भी किसी का अभाव बोध न करूँगी।'

'यह बात कोई ज़ोर के साथ कह नहीं सकता है कि जीवन में कभी ध्वंस नहीं आयेगा। शायद मरने के बाद ही मनुष्य अपने आपको पहचानने में भूल करते हैं। डरो मत, मैं जानती हूँ कि विनय तुझे चाहता है, और तू भी उसे चाहती है। शर्माओ मत, मैं इस बात को भली भाँति जानती थी, इसी से वचन दे दिया है, अगले महीने में ब्याह दूँगी। यदि दोनों में सच्चा प्रेम है, तो एक के दुःख में दूसरे का त्याग अपने-आप आ जायगा।'

'असम्भव है माँ, उन्हें क्यों वचन दे दिया?'—वह व्यथा के साथ बोली।

प्रतिमा के हृदय पर एक बोझ-सा गिर पड़ा। 'फिर किससे शादी करना चाहती है, कह कजरी? तू मेरी एक ही बेटी है। मैं तुझे ऐसा नहीं देख सकती हूँ! माँ से शर्म क्यों करती हो बेटी?'—व्याकुल होकर प्रतिमा ने पूछा।

'किसी से भी नहीं। नहीं-नहीं, मैं शादी न करूँगी, कर ही नहीं सकती, माँ!'

'जब कि बचपन में तेरी शादी नहीं की, तब आज मैं तुझसे जबरदस्ती भी नहीं कर सकती; क्योंकि आदमी के लिहाज से तुम्हारी भी स्वतन्त्र सत्ता है, कजरी! माँ होते हुए भी तुम पर ज़ोर करने का मुझे कुछ भी अधिकार नहीं है। केवल इतना ही पूछती हूँ, क्यों न करोगी?'

'मुझे क्षमा करो माँ!—वह प्रतिमा से लिपट गई।

प्रतिमा के आँसू से वह व्याकुल हो रही थी। रुद्ध रुदन से उसकी छोटी-सी छाती में खलबली मच रही थी। फिर भी वह लाचार थी, निरुपाय थी; क्योंकि मरण-पथ-यात्री की मरन-सेज पर क्वाँरी रहने का वचन दे चुकी थीं। उस वचन को तोड़ना जैसा असम्भव था, उसे प्रकाश करना उससे कहीं अधिक असम्भव था। वह सोचती थी, प्रकाश होने पर न तो सरस्वती को माता क्षमा कर सकेंगी, और न निखिल ही अपनी माँ को माफ़ कर देगा।

वे तो नहीं समझेंगे कि कैसी भूल, विश्वास एवं स्नेह से अन्धी बनकर उस दिन सरस्वती पृथ्वी को भूल बैठी थीं। वे विश्वास ही न कर सकेंगे कि वह भूल, वह अपराध सरस्वती का इच्छाकृत नहीं था और न यही विश्वास करेंगे कि उस ग़लती

के लिए आज वे अनुताप से किस तरह जली जा रही हैं। कजरी की चिन्ता विनय की ओर पलटी। वह चंचल हुई—माँ, ठाकुरजी के लिए माला गूँथने जाती हूँ।

सन्ध्या-समय बगीचे के कोने में बैठकर कजरी माला गूँथ रही थी।

'वाह, कैसी सुन्दर माला है। यह हार किसके लिए बन रहा है, कजरी ?'—बहुत देर से विनय उसके पीछे खड़ा था।

कजरी चौंक पड़ी—ठाकुरजी के लिए !

'मैंने समझा कि मेरे लिए बना रही हो, परन्तु अपनी उस मधुर हँसी को आज कहाँ खो आईं ?'

कजरी को जाने से रोककर विनय ने फिर कहा—दस दिन के बाद मैं आया और कुछ पूछे बिना ही तुम चलीं ? तो मैं ही बतलाता हूँ, दूसरे मकान पर उठ गया हूँ, फर्नीचर्स (सामान) खरीदने और उसकी सफाई में ये दस दिन निकल गये, अब तुम चलकर अच्छी तरह से सजा लेना।

कजरी एक मूर्ति की भाँति खड़ी ही रह गई। आवेग के साथ विनय कह चला—मेरी जीवन-लक्ष्मी, शब्द का एक टुकड़ा भी तो मुँह से निकालो, बेचैन हो रहा हूँ। उस छोटे-से शब्द के लिए अधीर हो रहा हूँ।

विवर्ण मुख से कजरी ने कहा—क्या कहते हो ? क्या यह शर्म है ! विनय मन-ही-मन असहिष्णु हो रहा था—कहो कजरी, मेरे उच्छृङ्खल जीवन में अपनी लक्ष्मी को आसन बिछाने में आपत्ति तो नहीं ?

कजरी काँपने लगी। कहने के लिए एक शब्द भी उसके कण्ठ में नहीं था। परलोक यात्री के अद्भुत खयाल का दाम आजीवन देना पड़ेगा, दूसरे को नहीं, उसी··· उसी को।

'कहो कजरी !'—वह व्याकुल हो रहा था।

कजरी के अन्तर में आँसू की नदी बह चली। उसके नस-नस में जिस अमर ममता, असीम स्नेह की सृष्टि हो चुकी थी, वह किस तरह और कैसे उसे प्रत्याख्यान कर देती। किन्तु नहीं—उसे अस्वीकार करना है, उसी को, यही थी उसकी भाग्य-लिपि—अदृष्ट का परिहास।

'उत्तर दो कजरी ।'—वही अधीरता, वही स्नेह, प्रेम-प्यार के साथ उसने फिर कहा ।

'माँ से कह चुकी हूँ ।'—कजरी ने सहमी हुई आँखें उठाईं ।

'मैं तुमसे सुनना चाहता हूँ, माँ से नहीं ।'

कजरी के मुँह पर दो मतवाले नयन तब भी गड़े हुए थे, उसने मुँह फेर लिया :

'नहीं ।'

'क्या, क्या कहा ?'

'नहीं ।'—बहुत धीरे से उसने उत्तर दिया ।

'मुझसे शादी करना नहीं चाहती हो ?'

'नहीं !'

मारे क्रोध के विनय अपने-आपको भूल बैठा । 'नहीं ? पर इतने दिनों तक तुम मुझसे जैसा बर्ताव करती आईं, उसे क्या कह सकता हूँ ?'

'मैंने कुछ भी नहीं किया ।'

'झूठ, बिलकुल झूठ । मौन रहते हुए भी उस मद-भरे नयनों की नीरव दृष्टि मुझे अपनी ओर आकर्षित किया करती थी । तुम्हारा छद्म आवरण मुझे विश्वास दिलाता था कि तुममें वास्तविक नारीत्व है । वह आवरण और भी कहता था कि दूसरी स्त्रियों की तरह केवल नूतन ही के पीछे नहीं भटकती फिरती हो । किन्तु आज जब कि तुम अपने असली रूप में मेरे सामने आईं···' कुछ देर ठहर-कर विनय फिर से कहने लगा—जाने दो, जो कुछ किया है सो अच्छा ही किया : किन्तु मेरे हृदय में कैसा तूफान उठा दिया है । कजरी, यदि यह बात आज तुम ज़रा-सी भी समझ सकतीं, तो शायद इस दुःख को मैं सह लेता । आज के पहले मैंने किसी को चाहा नहीं था । केवल तुम्हीं थीं—मेरी आराध्य देवी । सुनो कजरी, मुँह मत फेरो । मेरा आइडिया था, नारी केवल एक खेलने की गुड़िया होती है, और इसी विचार से उन्हें लेकर सदा खेला भी करता था ; परन्तु तुमने, हाँ तुम्हीं ने आइडियाज़ को पलट दिया, और मेरे प्रिन्सिपल के सामने अड़कर खड़ी हो गईं । यद्यपि आज मैं समझ रहा हूँ कि मुझे बहुत बड़ा धोखा दिया गया ।

'फिर भी यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि एक दिन सभी चीज़ों में परिवर्तन

ला दिया था। अब प्रश्न केवल इतना ही है कि तुमने ऐसा क्यों किया? यदि दूर की रहतीं, तो कम-से-कम मैं एक को तो आदर और सम्मान के साथ जीवन-भर पूजा कर सकता था।'

कजरी के हाथ-पैर ठण्डे हो रहे थे।

विनय ने परिहास के साथ कहा—अब मेरी समझ में आया मरा हुआ सरोज नहीं, वरन् धनवान् यतीश डाक्टर तुम्हारा प्रेमी है। तो मुझे, सरोज और यतीश को लेकर अभी तीन ही नम्बर हुए हैं, चौथे नम्बर के लिए ज़रा सावधान रहना कजरी।

कठोर स्वर से कजरी ने पुकारा—विनय बाबू!

[१७]

पानी बरस रहा था। खुली खिड़की के सामने विनय चुपचाप बैठा था। उसे खबर ही न थी कि पानी की बौछार से उसके कपड़े भीग रहे थे। सेण्ट की सुगन्ध फैलाती हुई मनिका कमरे में आई। उसने कहा—अरे, अभी बैठे ही हो? क्या सेशन जज के घर डिनर में जाना नहीं है?

पत्नी की भड़कीली साड़ी की ओर देखकर विनय ने उत्तर दिया—तबीयत ठीक नहीं है।

'शादी के बाद से सदा गम्भीर रहा करते हो। बीमारी लगी ही रहती है। तुम्हारी प्रैक्टिस जमाने के लिए बाबूजी ने सेशन जज के साथ तुम्हें परिचित करवाया। अवसर जीवन में एक ही बार आता है।'

'तुम्हारे बाबूजी को धन्यवाद; पर मुझे इन बातों से घृणा है मनि!'

'ऐसा! तो पहले क्यों न कह दिया? वे तो जमाई के लिए जान दें और उधर दूसरा हिसाब चले, भला यह भी कोई बात है? कृतज्ञता भी कोई वस्तु है।'

'घूस देकर धनवान् बनने में केवल विडम्बना ही नहीं, पाप भी है। इसके सिवा जो कुछ है, उसी में मैं सन्तुष्ट हूँ।'

उसने अवहेलना के साथ कहा—बहुत है? क्या है? तुम्हारा! समाज में पत्नी को भेजने के लिए जिसे गहने-कपड़े ससुराल से उधार मँगवाने पड़ते हैं, उसके मुँह में यथेष्ट शब्द पागल का प्रलाप नहीं तो क्या है।

'मेरी आर्थिक स्थिति जानकर ही तुम मेरे घर आई थीं मनि।'—आहत कण्ठ से उसने कहा। पति के वेदना-जड़ित स्वर ने मनि को व्याकुल कर दिया। उसने नम्रता के साथ कहा—पहले तुम ऐसे न थे।

'आदमी क्या सदा एक-सा रह सकता है!'—वह पत्नी की दृष्टि से अपने को छिपाना चाहता था।

'ऐसे अस्थिर चित्त के लोगों को शादी न करना चाहिए।'—पति के उत्तर से उसकी कोमलता जाती रही थी।

विनय को अनुभव हुआ, मनिका का अनुमान मिथ्या नहीं है। कई साल पहले की बात उसे याद आई, जिस दिन कजरी के प्रत्याख्यान ने उसे पागल बना दिया था, एवं मनि को विवाह करके उसने घृणा के साथ कजरी को भूलना चाहा था। इसके पीछे कई साल व्यतीत हो चुके थे, एवं कजरी की भविष्य वाणी भी सफल हो गई थी। आज वह सन्तान का पिता है। सुन्दरी शिक्षिता स्त्री, पुरुष के समान सुन्दर शिशु बावर्ची, आया से घर भरा हुआ है। है सभी कुछ; परन्तु सुख? नहीं, नहीं। वही तो कोई भारी गलती रह गई है।

विवाहित जीवन की पूर्णता आज भी नहीं आई। पत्नी की विलासिता की खुराक देते ही मासिक आय चुक जाती है; फिर भी बड़ी-बड़ी पार्टियाँ बुभुक्षित रहकर उसे बेचैन कर देती हैं, यही थी—उसके विवाहित जीवन की परम सार्थकता।

विनय ने ह्विस्की से भरा हुआ गिलास उठा लिया।

'बैठे-बैठे सोचा करोगे या चलोगे?'

'नहीं।'

'क्या तुम बाबूजी का अपमान करना चाहते हो?'

'ऐसा नहीं। मेरे जाने न जाने से उनके अपमान की तो कोई बात नहीं है मनि!'

'रिटर्न विज़िट भी कोई वस्तु है, क्या शराब के नशे में यह भी भूल बैठे हो? तुम्हारी विमला राय आदि भी वहाँ जायँगी; अब चलोगे न?'

'सिर में दर्द है मनि!'

अपने सोने के कमरे में जाकर मनिका पलंग पर गिर पड़ी। दूसरे ही क्षण

बच्चे को गोद में लिये हुए आया पहुँची, उसने कहा—साहब मेम साहब को फिट आया है।

किन्तु आया का उत्कण्ठित आह्वान व्यर्थ गया।

बच्चे को गोद में लेकर विनय उसके साथ खेलने लगा। यह बालक उसी का था।

दूसरे कमरे में मनिका वैसी ही चिल्लाने लगी।

'डाक्टर साहब को बुलाऊँ हुजूर?'—डरते-डरते उसने पूछा।

'हाँ, फोन कर दो।'

मोटर की आवाज़ से विनय ने खिड़की में से झाँका। नीरेन और नीरोजा उतर रहे थे।

'यतीश को फोन कर दिया है?'- अप्रसन्नता के साथ नीरेन ने दामाद से पूछा।

'जी हाँ!'

'मनि के कमरे में चलो, तुम्हारी सास बुला रही हैं।'

'यहाँ रहने से मनि मर जायगी, इसे घर ले चलो।'—नीरोजा ने पति से कहा।

द्वार पर से यतीश ने उत्तर दिया—मुझे तो विश्वास है, यहाँ रहने से इनकी बीमारी दिनोंदिन बढ़ती जायगी।

'ठीक है। अकेली पड़ी चिल्लाया करे, कोई देखता तक नहीं है।'

'विनय नहीं देखता?'

'लगभग दस मिनट से मैं बैठी हूँ, लड़की अकेली पड़ी चिल्ला रही है। हाँ, नौकर-चाकर अवश्य खड़े थे।'

डाक्टर के सामने नीरेन गृह-विवाद को छिपाना चाहते थे। पत्नी को संकेत से निषेध करते हुए वे बोले - विनय बच्चे को लिये था।

'ऐसे रोगी को छोड़कर बच्चे को खिलाना, भला यह भी कोई बात है! जब इन्हें फिट आते ही रहते हैं, तब विनय को चाहिए कि काम-काज बन्द कर दे और बैठकर सेवा करे।'—लापरवाही के साथ यतीश ने कहा। डॉक्टर सच कह रहा है या परिहास कर रहा है, यह बात नीरेन की समझ में न आई।

'हाँ, कुछ व्यवस्था करनी ही पड़ेगी, उसे देखो यतीश।'

होश में आकर मनिका उठ बैठी।

'उठ सकेगी मनि ? तो तैयार हो लो।' निरोजा ने कहा।

घड़ी खोलकर नीरेन बोले—अभी जाने में देरी है, मनि तब तक आराम कर लेवे। यतीश को चाय दो।

अभिमान के साथ मनि ने कहा—तीन बजे तुम्हें आना था, इतनी देर क्यों लगाई माँ ? जानती ही हो कि मेरी तबीयत ठीक नहीं रहती।

'मैं दो बजे आ रही थी, मीना आ गई, बेचारी की तक़दीर तो देखो।'

यतीश ने पूछा -मीना निखिल की स्त्री है न ?

'क्या निखिल की शादी हो गई है ?'—विनय के प्रश्न से सब लोग हँस पड़े।

अप्रस्तुत होकर विनय ने कहा भूल गया था, गये साल उसकी शादी हुई थी।

'क्या तुम अब वहाँ जाते नहीं हो ?'

श्वसुर के प्रश्न से विनय बिना कारण ही झुँझला पड़ा मैं वहाँ क्यों जाऊँ ? वे मेरे होते ही कौन हैं ?

उसके अभद्र बर्ताव से यतीश को छोड़कर बाक़ी सभी लोग विस्मित एवं असन्तुष्ट हुए, केवल वह मुँह फेरकर हँसने लगा।

'लड़की के साथ-साथ दामाद की भी चिकित्सा करो यतीश।'

'कभी-कभी ये न-जाने कैसे हो जाते हैं ; बाबूजी ?'—पति के लिए मनिका शंकित हो रही थी।

'मैं अच्छा हूँ। निखिल की स्त्री के विषय में आप क्या कह रही थीं ?'

नीरोजा ने कहा—दो दिन से बेचारी ने अन्न-जल तक स्पर्श नहीं किया ; पर घरवाली ने उसे पूछा भी नहीं।

'भला यह भी कोई बात है ! भैया, कजरी, बूआ, इन सबों ने उसकी खबर न ली ?' मनि ने कहा—तुम्हारे भैया ही यदि वैसे होते, तो मीना की यह दुर्दशा ही क्यों होती ?

यतीश ने कहा --मैं बचपन से निखिल को जानता हूँ, वह बिना कारण किसी पर अन्याय कर ही नहीं सकता एवं कर्तव्य को श्रेष्ठ समझता है। शायद स्त्री ही वैसी होगी।

'क्या कहते हो यतीश ? आंख के ऊपर ऐसे अत्याचार कौन स्त्री सह लेगी ?'

'माफ करिए, यद्यपि किसी के पारिवारिक विषय में आलोचना या प्रश्न करने का मुझे कोई अधिकार नहीं है, फिर भी निखिल मेरा मित्र है, इसी लिए मैं पूछता हूँ। क्योंकि उसके लिए यह एक नयी बात है।'

'नयी-पुरानी तो मैं नहीं जानती, पर कजरी जब शादी से इनकार कर वहीं रह गई तभी मैं समझ गई कि कोई बात ज़रूर ही है। यही बात निकली। अभी-अभी मीना कह गई कि निखिल उसका मुँह तक नहीं देखता। कजरी की आज्ञा में वह चलता है'

'बस इतना ही ?' - मुस्कराते हुए यतीश ने विनय की ओर देखा। गम्भीर ईर्ष्या विनय के नेत्रों पर थिरक रही थी।

'अच्छा, नमस्कार ! - यतीश चल पड़ा।

गाड़ी में बैठकर उसने विनय से कहा—भाई, दिन में तीन-चार बार आना मेरे लिए असम्भव है, मिसेस बोस के लिए मैं डाक्टर सरकार को भेज दूँगा।

'अच्छा ! क्या तुम अब चेतला में नहीं जाते हो ?'—प्रश्न करने के बाद विनय अपने आप ही आश्चर्यित होने लगा कि उसने ऐसा प्रश्न किया ही क्यों !

'आज जाऊँगा।'

[१६]

'दिन-रात तू क्या सोचा करती है, बहन ?'—परम स्नेह के साथ निखिल ने कजरी से पूछा।

'सोचूँगी क्या ? उस दिन मैनेजर काका कहते थे...'

'तू मुझसे बहुत छोटी है, कजरिया ! छिपाने से क्या होता है ? मुझे दुःख है। तेरी तबीयत भी खराब हो रही है। तुम और मा कुछ दिन के लिए मधुपुर चली जाओ, वहाँ की जलवायु अच्छी है। मैं भी कहीं चला जाऊँगा।'

'तुम कहाँ जाओगे ?'

'खादी-प्रचार के लिए, आराम में ?'

'और भाभी ?'

'वह तू जाने बहन ?'

इस बात को समझने में कजरी को देर न लगी कि उसीके सम्मान के लिए निखिल दूर भागना चाहता है। उसीके लिए वह पत्नी से बात तक नहीं करता। वह सोचने लगी—फिर भाई के जीवन में एक दुष्ट ग्रह की भाँति जड़ित रहकर उनके सुख-शान्ति को नष्ट करना क्या उसके लिए उचित होगा? बेचारी मीन भूल धारणा के कारण कैसा दुःख पा रही है। कई बार वह मीना को समझा चुकी थी। शायद वह अच्छी तरह समझा न सकी हो। धिक्कार से हृदय भर उठा। एक शांति-भरे संसार में अशांति की सृष्टि वही कर रही है। विडम्बित जीवन लेकर उसे लोक नेत्र के सामने न आना था; परन्तु दूसरे ही क्षण वह सोचने लगी, वैसा करने से अदृष्ट के साथ उसीकी पराजय घोषित होती।

'कजरी!'

वह चौंकी। निखिल की उपस्थिति वह भूल गई।

'जब तक तुम भाभी के साथ सद्व्यवहार न करोगे, तब तक न तो मैं ही जाऊँगी और न तुम्हीं को जाने दूंगी।'

'उस-जैसी नीच हृदय की स्त्री को मैं सुधार नहीं सकता कजरी! तू भी चेष्टा कर चुकी है।'

'सभी क्या एक-से होते हैं? उनकी गलती को सुधारकर ठीक रास्ते पर चलना हमारा काम है। विशेषतः तुम उनके पति हो।'

'मैंने कब कहा कि वह मेरी स्त्री नहीं है। तू नहीं जानती है बहन, किस आशा और कैसे स्नेह के साथ उसे मैं शादी कर लाया था, तू नहीं जानती कि मेरे प्रत्येक दिन की आन्तरिक चेष्टा को किस घृणित भाव से दुतकारा करती थी। भाई-बहन के पावन स्नेह को जो नारी पाप की दृष्टि से देख सकती है, वह भी कहीं सहधर्मिणी हो सकती है?'

'शुरू से लेकर आखिर तक हम भी तो भूल करते जाते हैं, भाई!'

'हम? परन्तु कैसे?'

'तुम पति हो, पहले अपनी गलती देखो। नारी अपने प्रिय पर पूर्ण अधिकार पाना चाहती है, हिस्सेदार वह सहन नहीं कर सकती। बाहरी कामों से तुम मतवाले रहते हो, वहाँ तुम्हारी ख्याति भी यथेष्ट है, जनता के तुम प्रिय-पात्र हो। बस,

तुम्हारी दुनिया उतनी ही है, एवं उसी को भली भाँति पहचानते भी हो; किन्तु घर-गृहस्थी में जैसे तुम अनाड़ी हो, वैसे ही अन्धे भी रह गये हो। आज तुम देश-मान्य हो। देश का काम, सम्मान का नशा तुम पर विजय पा चुका है, जिसके कारण घर के कर्त्तव्य में तुम उदास हो। जो कुछ पत्नी को दे रहे हो, उसे यथेष्ट समझना तुम्हारे लिए एक स्वाभाविक बात हो सकती है, पर भाभी के लिए नहीं। सबों की रुचि, शिक्षा एक-सी नहीं हो सकती। वह सब समय तुम्हें अपने पास देखना चाहती है। उसकी इच्छा कभी पूरी की थी? पत्नी के वास्तविक अधिकार उसे होना एक ज़रूरी बात है। भैया, तुम पति के कर्त्तव्य की अवहेलना कर रहे हो।'

'बाहरी जगत् में सहधर्मिणी के रूप में अपनी बगल में उसे देखना चाहता था कजरी!'

'तुम उन्माद में हो। उसके बचपन की शिक्षा से लेकर वर्तमान की ओर देखो भाई! उससे दो-एक दिन में ऐसी आशा करना भूल नहीं तो क्या है? अपने जीवन की नूतनता की तीव्रता को वह कौन-सी वस्तु से पूर्ण कर लेती? तुम्हारे कारखाने की मशीनों से या तांत और चरखे से? सहधर्मिणी के रूप में तुम्हारी बगल में खड़ी होने की स्पृहा उसे तब होती, जब कि उसके अन्तर की विलासिनी नारी आकण्ठ सुधा-पान कर चुकती, एवं जननी बन बैठती। मन को ऐसी स्थिति लेकर शादी न करना था। उसकी ओर से तुम निरे अन्धे ही बने रहना चाहते हो। उसके अभिमान का मूल्य तुम्हारे पास एक फूटे घड़े के समान है।'

'बस कर बहन। हाँ, दूसरी बात भी कह डाल, कम-से-कम जानकार तो हो जाऊँ।'

'हाँ, अब अपनी भूल बतलाती हूँ। क्या कारण के बिना भी कभी कोई कार्य हुआ है?'

'तू क्या कहना चाहती है?'— वह अवाक् हो रहा था। कजरी हँस पड़ी— घबराओ मत भैया! कहती हूँ। कोई न होते हुए भी इस घर की मैं मालकिन बनी बैठी हूँ, और कुँआरी हूँ। ये बातें यदि भाभी की दृष्टि में अपराध को सृष्टि करें, तो उन्हें दोष नहीं दे सकती हूँ।

'किन्तु उसे ही तू घर की मालकिन बनाना चाहती थी। अभी तक तू उसके

लिए जो करती आ रही है, मैं वह सब कुछ जानता हूँ। केवल इतना पूछता हूँ, उस परिश्रम का फल क्या निकला ?'

'केवल तुम्हारे ही लिए तो मैं सफल न हुई।'

'तू क्या कहना चाहती है कजरी, कि मैं दिनरात कठपुतला बना उसके सामने बैठा रहूँ और वह पतली रंगीन साड़ी का आंचल उड़ाती हुई पाउडर, सेण्ट लगाकर मेरे सामने बैठकर हँसी-मजाक किया करे, नखरे के साथ···'

'पर उनका वह बनाव-श्रृङ्गार तो केवल तुम्हारे ही लिए है। क्यों नहीं समझते कि उसकी शिक्षा ही निराली तरह की है। यदि देश के काम में अपने को सौंप चुके थे, फिर क्यों और किस लिए उसे ब्याह लाये और उसके जीवन को बर्बाद कर दिया ?'

'मैं सहधर्मिणी चाहता था बहन !'

'फिर वही बात ! चार ही छः महीने में तुम कैसे समझे कि वे सहधर्मिणी नहीं हो सकेंगी ? तुम अपने देश की पूजा करते हो और वे रूप, रस, गन्ध से भरे निर्मल पुष्पों से करती हैं अपने पति की पूजा। बस अन्तर तो केवल इतना ही है। तुम्हारी पूजा प्रतिपादन की आशा नहीं रखती, ऐसा कहने से झूठ कहना होगा, तो भाभी प्रतिपादन की आशा क्यों न करें। नूतन की उत्तेजना, उसे आकण्ठ पान की तृष्णा, देश के पूजन के समय एक दिन तुम्हें भी आई थी भैया, जो तीव्रता, मादकता आज तुम्हारे ही अन्तर में सौम्य रूप से विराज रही है। जिससे आज तुम्हारे रोम-रोम में लय होकर तुम और तुम्हारे देश माता में कोई पार्थक्य ही नहीं रखा है। वैसा उन्हें भी होगा। जब कि नूतन की उत्तेजना कट जायगी तब वे तुम्हारे मत से सहमत होकर सहधर्मिणी-रूप में आयेंगी। पति की पूजा से ही देश की पूजा को भी सीखेंगी। माता क्या अपनी माता की अवहेलना कर सकती है, भैया ? अब उसे सहधर्मिणी बनाना तुम्हारा ही काम है। तुम कहाँ जाओगे ? यहीं रहकर पति के कर्तव्य को पूरा करो।'

'कजरिया, तू बहुत बात करती है। और क्या-क्या कहना है, जल्दी कह दे।'

'मैं सब कुछ कह चुकी, अब कर्तव्य को पूरा करो। मैं अब बाहर जाऊँगी।'

'तू फिर यहीं लौट आयेगी न बहन ?'

'फिर कहाँ जाऊँगी भाई, यह आश्रम ही तो मेरा सब कुछ है।'

कजरी को वेदनातुर हँसी से निखिल व्यथित हुआ।

'बहन!'

'भैया, मैं आश्रम में जाती हूँ।'

'तू मुझसे कोई बात छिपाना चाहती है कजरी! अच्छा, जाने दो। देखो तो सही, बात-ही-बात में भूल जाता था, विनय के लड़के की पासनी में मैं तो न जा सकूँगा, तू और माँ जाना।'

'मैं, मैं!'—कजरी चौंक पड़ी।

आश्चर्य के साथ निखिल उसका मुँह निहारने लगा। उसके लिए कजरी एक पहेली-सी थी।

[१७]

आश्रम का काम अधूरा रहते ही कजरी उठ पड़ी। करीम शेख उसे बुलाने आया था। उसकी पत्नी बीमार थी।

आश्रम के पीछे गरीबों के लिए निखिल ने घर बनवा दिये थे। होमियोपैथिक चिकित्सा भी कजरी थोड़ी-बहुत जानती थी। आश्रमवासी या दरिद्रों के रोग में वह होमियोपैथिक से सहायता लेती थी। कठिन रोग होने पर यत्नेश बुलाये जाते थे। कजरी की चिकित्सा के गुण से या उसपर प्रबल विश्वास के कारण रोगी अच्छे हो जाते थे, यह कहना ज़रा कठिन है।

करीम-पत्नी बिसमिल्ला की चिकित्सा कजरी कर रही थी। उसके पलंग पर बैठकर कजरी ने पुकारा—बिसमिल्ला!

उसने आँखें खोल दीं। वह प्रलाप कर रही थी। उसकी सास रोने लगी—इसे बचाओ रानी दीदी!

बरफ से भरा बेग उसके सिर पर रखकर कजरी ने कहा—इसे उठने तो नहीं देतीं बड़ी माँ?

'नहीं रानी, पैखाना-पेशाब मैं साफ़ करती हूँ।'

'तुम डरो मत, डाक्टर बाबू आते होंगे।'

बुढ़िया आर्त्तनाद कर उठी—डाक्टर मत बुलाना रानी, तुम इसका इलाज करो, मैं हाथ जोड़ती हूँ ।

'अब बिना डाक्टर के कैसे काम चलेगा, बड़ी माँ ।'

'पर उनकी दवा से फ़ायदा न होगा, अगर बचेगी तो तुम्हारी दवा से । तुम पर ख़ुदा की दुआ है रानी !'

इस अंध-विश्वास का अन्तर कितना विशाल है ! अत्यंत आश्चर्य के साथ कजरी उसका मुँह निहारने लगी ।

घर लौटते समय कजरी ने कहा—एक बार डाक्टर को बतलाना ही पड़ेगा । रात को मैं और भैया यहीं रहेंगे ।

घर में लौटकर कजरी मिठाई बनाने को बैठ गई ।

'मुझे देर हो रही है भाभी, रसगुल्ले बनाकर भैया को बुला लेना, मैं जाती हूँ ।'

'मैं कैसे बनाऊँ ? उन्हें तो मेरा काम पसन्द ही नहीं आता ।'

'क्या बकती हो बहन ! क्या मैं तुमसे अच्छा काम कर सकती हूँ ? न-जाने म कैसी हो । पति का आदर करना कब सीखोगी । भूल मत करो बहन, पति को पहचानो । मैं ज़ोर देकर कह सकती हूँ कि जिस दिन तुम उन्हें भली भाँति पहचान लोगी, उस दिन समझोगी कि तुम्हारे स्वामी कैसे महान् हैं । माँ और बूआ क्या अभी तक नहीं लौटीं ?'

'नहीं ।'

दोपहर में, सरस्वती और प्रतिमा मजदूरों को अखबार, रामायण आदि पढ़कर सुनाया करती थीं । रात में कजरी को पाठशाला दो घण्टे तक लगती थी । काम बहुत बढ़ गया था ।

'मैं उन्हें कैसे बुलाऊँ, वे तो मुझसे बात नहीं करते ।'

'उन्हें तुम्हीं बुलाओगी और अपनाओगी ।'

'तुम केवल मुझे ही दोष देती हो ।'

उसके आँसू पोंछकर कजरी बोली—तू मेरी छोटी बहन है मीना ; तुझे दोषी कैसे कहती ? उन्हें बुला लो ।

'मुझे माफ़ करो दीदी, तुम्हीं उन्हें बुला लो ।'

'सबेरे रोटी खाने के बाद भैया को क़ै हुई थी। वे भूखे होंगे। अच्छा, मैं पहुँचा देती हूँ।'

प्रायः महीने-भर के बाद आज निखिल ने पत्नी से पूछा—मुझे बुलाया है ?

'दीदी की आज्ञा से !'—उसने धीरे से कहा।

जान-बूझकर मीना ने 'आज्ञा' शब्द पर ज़ोर दिया, यह समझकर भी निखिल तरह देता हुआ बोला – यदि इतने दिनों के बाद बुलवाया, तो क्या केवल झगड़ने ही के लिए ? भूख ज़ोर से लगी है मीना !

स्वामी क्षुधार्त्त हैं। भारतीय नारी की ईश्वरदत्त करुणा मीना के हृदय में मूर्त्त हो उठी।

वह स्नेहमयी पत्नी के रूप में, हँसमुख से पति को भोजन कराने लगी।

कजरी की पाठशाला में उस दिन मीना भी दीख पड़ी।

'अब तुम जाओ भाभी, भैया अकेले पड़े होंगे।'

'अपने पास रहने दो दीदी !'

'आज यह कैसी नई बात सुन रही हूँ, भाभी ?'

मीना कजरी से लिपट गई—मैंने छिपकर तुम्हारी सभी बातें सुन ली हैं दीदी ! मुझे कहाँ जाने के लिए कहती हो ! मैं कहीं न जाऊँगी, यहीं रहूँगी। अपनी बगल में मुझे ज़रा-सी जगह कर दो दीदी !

परम आदर से उसे गले लगाकर कजरी ने कहा—कहाँ जाओगी तुम। इस घर की तुम लक्ष्मी हो मीना, कभी भी अपने को दूसरे से तुलना करने मत जाना और न अपने को किसी से कम ही समझना ! अब जाओ, सो रहो।'

[१८]

विनय के लड़के की पासनी में आत्मीय-आत्मीय से घर भरा हुआ था। नर-नारी के हास्य, सङ्गीत से आनन्द का झरना बह रहा था। केवल विनय को छोड़कर बाक़ी सभी लोग आह्लाद के साथ बातचीत में लगे हुए थे। विनय अनमना-सा बैठा था। उसकी दृष्टि बार-बार उस तरुणी पर पड़ रही थी, जो कि खादी की साड़ी पहने हुई थी। बहुत दिन पीछे आज विनय कजरी को देख रहा था। विनय को अनुभव हुआ,

कजरी पहले-से बहुत कुछ बदल गई है। वह विस्मित हुआ, उस गर्वित रमणी का ऐसा परिवर्तन—कब और कैसे, किस लिए हुआ ?

'उस दिन कहाँ गई थीं ? आपसे मुलाकात न हुई।'

'भाभी के मायके।'—कजरी ने कहा।

'मैंने सुना है कि आप कहीं चली जा रही हैं !'—यतीश ने पूछा।

'पर···जन्म-भर के लिए नहीं।'—कजरी हसने लगी।

कजरी की वह हँसी विनय के अन्तर में कैसी जलन उपस्थित कर सकती है, यदि यह बात वह जानती, तो शायद ही हँसती।

विनय की उस दृष्टि को देखकर कजरी सिहर उठी।

'विनय, इधर आकर बैठो न, लड़का और उसकी माँ कहाँ हैं ?'—यतीश मुस्करा रहा था।

विनय यतीश के निकट आया। उसने कहा—ऊपर हैं, अभी आती होंगी, आप कब आईं मिस दे ?

'बहुत देर से बैठी हूँ। क्या आपने देखा नहीं ?'

यतीश ने उत्तर दिया—इससे यही समझा जाता है कि विनय ने देखा नहीं था। आप क्या कहती हैं कजरी देवी ?

री हँसी।

डाक्टर ने कहा—आपकी दी हुई शर्ट, पैण्ट आदि फट गये हैं, और बनवा दीजिए।

खुश होकर कजरी ने उत्तर दिया—चार दिन में पहुँचा दूँगी

शेफाली ने पूछा—क्या आप सीती भी हैं ?

'नहीं, आश्रम की लड़कियाँ सीती हैं।'

यतीश ने कहा—शर्ट, पञ्जाबी और पैण्ट चाहिए, कोट अभी है।

'अच्छा, एक-एक दर्जन सभी चीज़ें भिजवा दूँगी।'

'नाप मैं कल तक पहुँचा दूँगा।'

'नहीं आपके नाप मय नाम और नम्बर के साथ रखे हैं।'

'सचमुच कजरी देवी, आपके आश्रम की व्यवस्था बहुत अच्छी है।' तिक्त कण्ठ

से विनय ने कहा—हमारा अस्तित्व भूलने से काम नहीं चलेगा डाक्टर। कम से-कम सभ्यता के नाते भी हमसे थोड़ी-बहुत बातें करने में तुम्हें नुकसान न होगा।

'ज़रूर-ज़रूर, अच्छा तो परिचय करवा देता हूँ। वे हैं शेफाली देवी, और कजरी देवी से शायद तुम्हें नई रीति से परिचय करवाना न पड़ेगा विनय ?'

'मेरी तरफ़ से जरूरत नहीं है ; पर उन्हें शायद अब ज़रूरत हो।'

'आपको पहिचानने में मैंने ग़ल्ती नहीं की विनय बाबू !'

ये शब्द कजरी के थे।

'फिर अभी तक ऐसे अपरिचित की तरह बर्ताव, यह क्या केवल अभिनय ही चल रहा था, मिस घोष ?'

आहत कण्ठ से कजरी बोली—यदि आप अभिनय समझकर सन्तुष्ट होवें तब...

विनय के प्रश्न का उत्तर कजरी ने तो नहीं ; पर यतीश ने यों दिया—वे यदि कहने में शर्माती हों तो न सही ; मैं ही कह दूँ।

'चुप रहो यतीश ! मिस घोष के मुँह से सुनना चाहता हूँ।'

'कहती थी—ऐसी हालत में मैं लाचार हूँ।'

'ओह !'

किसी ओर देखे बिना कजरी उठी। 'खोका को देख आऊँ।'—अपने-आप कहती हुई वह चल पड़ी।

सीढ़ियाँ तय करती हुई कजरी ऊपर चढ़ी। सामने के कमरे में पलने पर सुन्दर शिशु पड़ा खेल रहा था। बच्चे को छाती से लगाकर परम आदर से कजरी उसके गालों को चूमने लगी। वह अपने को भूलकर बच्चे को खेलाने लगी, आँचल ज़मीन पर लोटने लगा, जूड़ा पीठ पर बिखर गया, आँसू की बूँदें गालों पर टपकने लगीं। वह जान तक न सकी कि द्वार पर खड़ा विनय मुग्ध नयन की विस्फारित दृष्टि से उसे निगल रहा है।

'मेरा बेटा, दुलारा बच्चा !'—कजरी दुनिया को भी भूल रही थी।

'तुम ! तुम !'—वह इसके आगे और कह न सकी।

'हाँ, मैं हूँ कजरी।'

कजरी एक मूर्ति की भाँति खड़ी ही रह गई।

विनय ने कहा--ज़्यादा देर तक तुम्हें दिक न करूँगा, मेरी बातों का जवाब दे दो।

उसके कण्ठ की मूर्त्त वेदना कजरी को काँटे-जैसी गड़ने लगी।

'याद है न ? आज से कोई चार साल पहले की बात। जिस दिन तुमने मुझे अपमान के साथ दूर हटा दिया था, उस वक्त मैं समझा था तुम किसी और को चाहती हो ; पर इन चार सालों में भी जब तुम अपने प्रिय से नहीं मिलो, तब कजरी, मेरी समझ में नहीं आता है कि यह है क्या ? बीमारी की हालत में तुमने जैसी सेवा पाई, जो व्यथा, प्रेम, प्यार तुम्हारी आँखों में देखा करता था, उन्हें झूठा कहकर अस्वीकार करने से भी नहीं चलता। तब सोचता था कि तुम सरोज को चाहती हो, फिर इतने दिनों तक मृत की स्मृति लेकर नहीं चल सकता। तो यह क्या है ? मेरी समझ में नहीं आता कि यह है क्या ? कहो-कहो कजरी, कहो रानी, उस दिन जो कुछ बोली थीं वह भूल थी, वह खाली लज्जा, केवल अभिमान हो था, चाहती तुम मुझे ही हो, जरा-सा चाहती हो, वह चाह, चाहे बूँद ही भर क्यों न हो, उसी में मैं तुष्ट रहूँगा !'

कजरी खड़ी-खड़ी काँपने लगी। एक शब्द भी वह कह न सकी। कजरी के हाथों को अपने हाथों में लेकर वेदनातुर स्वर से विनय ने कहा—मेरी कजरी, मेरे पास लौट आओ।

'पत्नी पर अन्याय कर रहे हो। हाथ छोड़ो। तुम विवाहित और सन्तान के पिता हो, ऐसी चिन्ता मन में लाना दोष ही नहीं, वरन् अपराध भी है !'

'चिन्ता में भी पाप है ? झूठ, बिलकुल झूठ। चिन्ता की परिस्थिति असीम होती है, यदि हम चाहें भी तो उसे किसी तरह के कानून के फन्दे में बाँधकर नहीं रख सकते और न उस सर्वग्रामी प्रेम को ही, जो कि कभी किसीसे छोटा हो ही नहीं सकता। वह है ईश्वर की एक अपूर्व एवं श्रेष्ठ सृष्टि। दुनिया में यह जो प्रेम का खेल और अभिनय अविराम चल रहा है, उसे यदि कवि की कल्पना से स्वर्गीय न सोचा जाय, तो इसमें दुःख, लज्जा, अपराध के सिवा कुछ भी नहीं है रानी ! प्रेम ऐसी श्रेष्ठ वस्तु घृणित नहीं हो सकती, चाहे वह प्रेम किसी पर क्यों न हो। चाहना आदमी का स्वभाव है, प्रकृति का नियम है। वह स्वभाव, वह नियम न बदलना ही

स्वाभाविक है। तुम्हें मैं चाहता हूँ, रोको मत कहने दो, तुम्हें तुम्हीं को चाहता हूँ,—समुद्र-से अथाह प्रेम की रानी : वह—मेरी पत्नी, नहीं तुम हो। पत्नी को मैं अवहेलना करता हूँ, ऐसा नहीं है, उसका प्राप्य उसे देता हूँ; परन्तु इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि तुम्हें भूल जाऊँ।'

'विनय बाबू!'

'नहीं, सुनो कजरी! तुम नहीं जानती कि कैसी तकलीफ़ से मेरे दिन कट रहे हैं, एक बार तुम कह दो कजरी कि ज़रा-सा प्यार तुम मुझे करती हो, मन के उस गोपन अंश में वह प्रेम केवल मेरे ही लिए रख दिया है, उस हृदय का अधिकारी मैं हूँ, दूसरा नहीं।'

'नहीं।'

'क्या कहा, नहीं? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता है, मैंने ही सुनने में ग़लती की, फिर कहो कजरी!'

कजरी विकल हुई। विह्वल भाव से धीरे-धीरे वह बोली—नहीं, नहीं।

'फिर नहीं?' विनय आपे से बाहर हो गया। उन्माद हो रहा था।

'तो आज जबरदस्ती करनी पड़ेगी?'

कजरी डरी मुझे माफ़ करो, मनिका पर अविचार मत करो।

'मैं यह सब कुछ नहीं सुनना चाहता।'—उसने कजरी को अपनी ओर खींचा। कजरी उसके पैर-तले बैठ गई मुझे माफ़ करो, पत्नी से प्रतारणा मत करो।

'तुम मेरी हो···मेरी-मेरी!'

'माफ़ करो विनय बाबू।'—कजरी की नसें अवश हो रही थीं। आँखों से आँसू की नदी बह चली थी।

कमरे में वज्राघात-सा हो गया—वाह-वाह अच्छा ऐक्टिंग हो रहा है, और विनय तुम?

घृणा की दृष्टि से उन दोनों को घूरती हुई नीरोजा खड़ी थी। शव की नाईं विवर्ण मुख से कजरी उठकर खड़ी हो गई।

विनय ज़रा हट गया। नीरोजा के पीछे मनिका आकर खड़ी हो गई।

'मीना का तो सर्वनाश कर चुकी हो, अब मेरा घर जलाने को आई हो ?' कर्कश स्वर से नीरोजा ने कहा। घर की वायु स्तम्भित-सी हो गई।

'जा बेहया दूर हो, विनय तुम ऐसे हो !'

मनिका के फिट की चिल्लाहट से नीचे के प्रायः सभी लोग ऊपर आ गये।

पति के आगे नीरोजा रोने लगी—लड़की का जीना अब कठिन है।

'आखिर हुआ क्या ?'—नीरेन की आवाज़ में आश्चर्य था।

'अपने जमाई से पूछो। मैं अब समझी कि मेरी लड़की की ओर वह लौटकर भी क्यों देखता है। इसी कजरी चुड़ैल ने उसे पागल बना रखा है, वह जादू जानती है, जादू, जादू !'

'यह तुम क्या बकती हो, नीरोजा ?'

'मैंने और मनि ने अपनी आँखों देखा है।'

उतने आदमियों के सामने विचलित होता हुआ भी विनय नीरव हो रहा।

'यह सब क्या है विनय ?'—नीरेन के प्रश्न का उत्तर किसीने न दिया।

केवल एक आदमी करुण व्यथा के साथ कजरी को देख रहा था, वह यतीश था। उसे अनुभव हुआ, यदि अभी कजरी को सहायता न दी जायगी, तो वह गिर पड़ेगी।

यतीश को कजरी की ओर बढ़ते देखकर विनय के नेत्रों का ख़ून गरम होने लगा। कल्पना की मोहिनी...आँखों के सामने थिरकने लगी, सन्देह का समाधान हो गया—और किसीको नहीं, कजरी इसी यतीश को ही चाहती है।

ईर्ष्या के निकट विवेक हार बैठा, विनय की विवेचना-शक्ति जाती रही। अन्तर के कोमल अंश पर राक्षस ने आँखें निकालीं।

त्यक्त कण्ठ से उसने कहा—पैर-तले पड़ी हुई स्त्री को विमुख करना पुरुष का धर्म नहीं है।

'ऐसा कहो, सब अनिष्ट की जड़ वह चुड़ैल है। हमारे विनय में ऐसे रोग नहीं हैं, वह तो हीरे का टुकड़ा है। आप सबने सुना न ? ऐसी बेहया लड़की भी मैंने नहीं देखी, बेशर्म, कमीनी कहीं की।'—नीरोजा ख़ुश हो रही थी।

असहनीय विस्मय से यतीश ने एक बार विनय को देखा, फिर दूसरे ही क्षण उसने

बेसुध कजरी को हाथों पर उठा लिया। यतीश द्वार की ओर बढ़ा ; परन्तु विनय सामने अड़कर खड़ा हो गया।

'कहाँ ले जाते हो ? किस अधिकार से तुमने उसे गोद में उठा लिया ?'—विनय उस दृश्य को देख नहीं सकता था।

'जिसे तुम मारना चाहते हो, उसे मैं जिलाना चाहता हूँ, किन्तु कापुरुषता की भी सीमा है विनय, हटो, रास्ता छोड़ो।'

'उसे मत छुओ डाक्टर !'

'हटो, दूर हो। किताबों में तुम्हारी अमर कीर्ति ज़रूर ही लिखी रहेगी। अस्थिर-चित्त, कापुरुष ! एक निर्दोष नारी का इस तरह अपमान करते शर्म नहीं आई ? तुम्हारे वीरत्व, पौरुष की तुलना न है और न हो ही सकती है।'

मोटर पर सरस्वती की गोद में कजरी को सुलाकर यतीश ने कहा—इन्हें घर ले जाइए, मैं अभी आता हूँ।

मोटर चली गई। यतीश अपनी टोपी लेने के लिए लौटा। किसीने उसके हाथ पकड़ लिये।

अन्धकार होने पर भी विनय को पहचानने में यतीश ने भूल न की।

'खून करोगे ? तो यह दूसरी बीरता है !'

'मैं जानता हूँ कि कजरी को तुम चाहते हो ; पर वह.. मैं उसकी बात पूछता हूँ, क्या वह तुम्हें चाहती है ?'

'ऐसा प्रश्न करने का क्या तुम्हें कोई अधिकार भी है ?'

यतीश के कण्ठ के परिहास ने विनय को आघात अवश्य ही किया, फिर भी बेशर्मी के साथ उसने पूछा - केवल इतना ही तो पूछता हूँ, क्या वह भी चाहती है ?

'चुप रहो, अभी-अभी जिसके मुँह पर कालिख लगा दी है, लोकनेत्र के आगे जिसे जन्मभर के लिए कुएँ में ढकेल दिया है, उसकी कोई बात सुनने का तुम्हें कुछ भी अधिकार नहीं है। इस स्पर्द्धा, इस निर्लज्जता की भी सीमा रहनी चाहिए, विनय !'

'इसका बदला तुम्हें मिलेगा।'

यतीश ज़ोर से हँसा—तुम्हारे ऐसे हज़ारों विनय मिलकर भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। जो बिगाड़ सकते हैं, उनकी जाति ही निराली होती है ; किन्तु सच

बात जिस दिन समझोगे, उस दिन की तुम्हारी स्थिति को सोचकर तुम्हारे ऐसे शैतानों के लिए भी मुझे दुःख होता है विनय ! और गुस्सा आता है उस लड़की पर — उसके प्रेम पर। एक अस्थिरचित्त, डरपोक, लम्पट, स्वार्थी के लिए वह प्राण दे रही है ! मैं जानता हूँ, और अच्छी तरह से जानता हूँ कि ऐसी भयानक घटना के बाद भी उसका प्रेम—छोटी सी छाती के भीतर जीता रहकर उसके—प्रिय के सभी अत्याचारों को नीरव, शान्त भाव से सहन करेगा, और न वह उसके विरुद्ध दुनिया के सामने कभी अनुयोग ही करेगी।

'तुम क्या कह रहे हो यतीश ? मेरी समझ में नहीं आया। जरा साफ-साफ कहो भाई !'

'तुम्हारे ऐसे आदमी को मैं जरा-सी खुशी भी नहीं दे सकता हूँ।'

विनय यतीश के पैर पर गिर पड़ा—कहो भाई, क्या वह मुझे चाहती है ?

उदास व्यथा के साथ डाक्टर ने उत्तर दिया—जरा-सा नहीं। उसके हृदय में तुम्हीं-तुम हो, तुम्हीं राक्षस को पति के आसन पर बिठाकर मन ही-मन वह पूजा किया करती है। यदि तुम अन्धे न होते, तो आज मुझे कहने की जरूरत न पड़ती। अपने-आप देख सकते थे।

'यदि ऐसा है, तो मुझसे शादी करने में उसने इनकार क्यों किया ? तुमसे तो सब कुछ कह चुका हूँ यतीश !'

'तुम निरे बुद्धू हो। मान लिया जाय कि वह दूसरे को चाहती है, तो क्या अभी तक उसकी शादी रुकी रहती ? यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि वह करोड़ों में एक ही स्त्री है, उसे ब्याहने के लिए हरएक तैयार हो जायगा।'

'ठीक है, तुम्हीं तो उसके प्रेमी हो।'

'बस चुप रहो, मैं आगे सुनना नहीं चाहता हूँ।'

'माफ करो यतीश ; परन्तु एक बार और कह दो कि यदि ऐसा था, तब उसने मुझसे शादी क्यों न की ?'

'क्योंकि वह शादी कर ही नहीं सकती।'

'यही पूछता हूँ, क्यों नहीं कर सकती ?'

'सरोज को भूले न होगे, वह था तुम्हारा दूसरा रूप। दुनिया में कजरी के प्रिय

न तो सरोज ही हैं और न यतीश। वही स्वार्थी, बेसमझ, डरपोक विनय है उसका प्रियतम - जीवन की खुशी और मुँह की चिर नवीन हँसी, पर अदृष्ट को यह पसन्द नहीं था, मरते वक्त सरोज कजरी से वचन लेकर मरा - वह विवाह न करेगी। द्वार के बाहर खड़ा-खड़ा मैं एक नीरव साक्षी रह गया, उन्हें गुमान तक न हुआ कि मैं वहाँ मौजूद हूँ। वह बात ऐसी अचानक हुई, कि मैं विमूढ़-सा खड़ा ही रह गया। कुछ विचारने का या बाधा करने का समय तक न मिला। वह स्थिति ही ऐसी थी; किन्तु उस अभागे ने एक बार सोचा भी नहीं कि जो नारी उसे चाहती नहीं है—चाह सकती ही नहीं, उसे जीवन-भर उस वचन का दाम कसे भीषण भाव से देना पड़ेगा। मेरी समझ में एक तरह से उसने भला किया—याने तुम्हारे हाथ से उसे बचाकर मरा।'

बहुत देर के बाद डाक्टर की बातों में विनय की तन्मयता टूटी। विषाद-भरे स्वर से डाक्टर ने कहा— कजरी क्या है, अब समझे? या अब भी सन्देह है? तुमसे वह सदा दूर हटी रहती है; क्योंकि अपने प्रिय को कर्त्तव्य-च्युत नहीं देख सकत, कजरी-ऐसी लड़कियों की जात ही निराली होती है। जाओ, अब कभी उसके जीवन के एक छोटे-से पथ में भी अपनी छाया मत डालना। मुझे विश्वास है कि तुम्हारा आज का हृदयहीन, नीच बर्ताव वह सह लेगी।

सीधे ऊपर चढ़कर विनय ने अपने सोने के कमरे का द्वार भीतर से बन्द कर लिया। इसके बाद उसने शराब की बोतलों को खिड़की से फेंक दिया, फिर आँखें बन्द कर पलंग पर लेट रहा। आज उसे अपने-आपसे समझौता करना है, जो जीवन केवल भूल, त्रुटि, अत्याचार और अपराध से भरा हुआ है, उसके थोड़े-बहुत संस्कार का विशेष प्रयोजन हो रहा है। द्वार पर धक्का देती हुई मनिका पुकारने लगी, दरवाज़ा खोलो, नीचे आओ, सब तुम्हें बुला रहे हैं।

'बुखार चढ़ा है। मनि, आज तुम सँभाल लो।'

'वे क्या कहेंगे?'

'विनय चुप रहा।'

[१९]

'उस दिन क्या हुआ था?'—निखिल ने यतीश से पूछा।

'क्या वे बातें मुझसे ही सुनना चाहते हो निखिल ?'

'हाँ, तुमसे, तुम्हीं से । कहो, मैं अधीर हो रहा हूँ ।'

सरोज की मौत से लेकर उस दिन विनय के घर पर जो कुछ हुआ था, वहाँ तक सुनकर निखिल ने हाथों से मुँह ढँक लिया ।

'बेचारी बहन ! किन्तु पहले ही तुम्हें कहना था यतीश ।'

निखिल के हृदय के परदों को चीरकर एक करुण, दर्दीला, दीर्घ श्वास निकल पड़ा—मेरी अभागी बहन—उसने अपनी बात को दोहराया ।

'माँ के सामने सब बातें हुई थीं ; इसलिए तुम्हें कहना नहीं चाहता था, पर यह ज़ोर के साथ कह सकता हूँ कि सरोज की वैसी दशा और उस समय की उस स्थिति में पड़कर माँ घबरा गई थीं, उन्होंने जान-बूझकर कजरी पर अविचार नहीं किया था । —इन बातों को बहुत ही धीरे, झेंपता हुआ यतीश कह तो गया । पर वह मित्र के मुँह की ओर निहार नहीं सकता था ।

निखिल कठपुतली की तरह स्तब्ध बैठा रहा ।

'कजरी बहुत दुर्बल हो रही है । उसे चेंज की ज़रूरत है ।' यतीश के ये शब्द दीर्घ श्वास की भाँति कमरे के कोने-कोने में गूँजने लगे, किसीने उत्तर न दिया ।

'सुनते हो निखिल ?' उसने निखिल को हिलाया ।

'सब कुछ सुन रहा हूँ भाई, अच्छा नमस्कार ।'—निखिल चल पड़ा ।

घर पहुँचकर एकान्त में निखिल ने माता से पूछा—यह बात क्या सच है माँ ?

'कौन बात बेटा ?'

'सरोज से कजरी की प्रतिज्ञा ?'

'सच है बेटा !'—उन्होंने आँचल से अपना मुँह ढाँप लिया ।

'माँ !'

'तुम जो कुछ कहना चाहते हो, सो मैं जानती हूँ और यह भी जानती हूँ, मेरे अनुताप से अब उसे लाभ और नुकसान कुछ भी नहीं है, परन्तु नहीं, नहीं, अब मैं कुछ भी न कह सकूँगी ।'

तुमसे छिपाया क्यों ? कजरी मुझे सौगन्ध दे चुकी थी कि भैया से मत कहना ।

कजरी अपने-आप ही मुझे क्षमा कर चुकी है ; किन्तु उसकी माफ़ी ही क्या सब कुछ है निखिल ? मैं अपने को कैसे क्षमा करूँ ।'

'मुँह मत ढाँको माँ । मेरी ओर देखो । जो कुछ होना था सो हो गया, कहता था – उसके जीवन को लेकर दुनिया ने आज जो कुछ खेल खेला है, उस खेल ही में वह मिट न जाय—वरन् उस खेल पर वह विजय पा सके, तुम भी कजरी को आशीर्वाद दो माँ ।'

'आपकी दीदी बुला रही हैं ।' मीना ने सास को पुकारा ।

आंचल से आँसू पोंछती हुई सरस्वती चली गई ।

'तुम उदास क्यों हो ?' मीना ने पति से पूछा ।

'कजरी कहाँ है ?'—वह पत्नी के प्रश्न को टालना चाहता था ।

वे काम कर रही हैं, सारे दिन काम और काम । थकतीं भी नहीं । उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता है कि एक चलती-फिरती मशीन हैं, दीदी आदमी नहीं, शाप-भ्रष्ट देवी हैं ।'

'पहले कजरी कैसी थी मीना ?'

अपने हाथों से मीना ने निखिल का मुँह दबा लिया ।

'वे बातें मत कहो, उन्हें मैं समझी न थी ।'—मारे शर्म के मीना सिमटी जाती थी ।

'फिर उस भूल का अन्त कैसे और कब हुआ ?

'जाओ, मैं नहीं जानती ।' एक जिद्दी बालिका की तरह वह मुँह फेरकर बैठ गई ।

निखिल हँसा – सुनो तो सही, मैं कहता था, उस देवी के साथ रहकर तुम भी कहीं देवी न बन जाना ।

'उस दिन अपने को भाग्यवती समझूँगी, जिस दिन उनके पैर तले खड़ी होने के योग्य हो जाऊँगी । उनमें कोई ऐसी आकर्षण-शक्ति है कि जो उनकी ओर अपने-आप ही खिंचते चले जाते हैं । मुझे आश्चर्य है कि वह ऐसी कौन-सी चीज़ है ?'

'प्रेम और आनन्द । प्रेम उसके हृदय में है और ख़ुशी का झरना आँखों में । भली-बुरी स्थितियों में वह घुलकर मरना नहीं जानती है—वरन् जानती है उन भले-

बुरों को ख़ुशी की नदी में स्नान करना। उसके लिए दुःख है—आमोद। व्यथा है—मोहक। अभाव—कौतुक है और ईर्ष्या—एक विस्मय। वह दुनिया का मुँह नहीं निहारती – दुनिया उसका मुँह निहारती है, मैं कहाँ तक कहूँ—अदृष्ट-लिपि उसके लिए क्रीड़ा की वस्तु है। तुमसे आज कहता हूँ, मैं भागा जाता था, तुम्हें छोड़कर जीवन-भर के लिए, पर उस पाप से उसीने मुझे बचाया।'

'तुम ? पर कैसे ?'—वह विस्मित हो रहा था।

'अब मुझे लजाओ मत, बस इतना ही कहूँगी कि मुझमें सभी तरह के गुण थे, माने छिपकर बातें सुनना भी।'

पत्नी की लजीली आँखों की ओर देखकर निखिल हँसा—वही सरल, उदार हँसी। तुम तो अब वह मौना नहीं हो, फिर शर्माती क्यों हो ?

[२०]

कजरी बैठी महीने का हिसाब मिला रही थी। यतीश को देखकर उसने पूछा – आइए डाक्टर बाबू, ऐसे बेवक्त कैसे आये ?

'माथुर, भैया को बुला ला।'

निखिल के आने के बाद यतीश ने कहा—विनय को टाईफाइड हुआ है। कल से डिलिरियम में है, उसकी अवस्था खराब हो रही है, शायद ही बचे।

'तो मैं क्या करूँ ? क्या करने को कहते हो, साफ़-साफ़ कह दो ? याने उस बेईमान की सेवा के लिए कजरी को भेज दूँ ? बस, यही कहना चाहते हो न ?'

निखिल के चेहरे में विरक्ति और विराग का खेल चल रहा था, और ओठों पर परिहास की हँसी।

'सुनो भाई, मरते हुए पर क्रोध नहीं, दया और क्षमा करनी चाहिए। अब वह हम सभी की करुणा का पात्र है, उसकी दशा देखकर मुझ-जैसे कठोर के आँसू भी नहीं रुकते। केवल कजरी देवी का नाम ले-लेकर वह चिल्ला रहा है।'

'और उन्हीं बातों को कहने के लिए तुम दौड़े आये हो ? यद्यपि सेवा ही को कजरी ने जीवन का मुख्य ध्येय कर लिया है ; फिर भी बहन वहाँ पर नहीं जा सकती। आत्मसम्मान का ज्ञान सभी को रहता है डाक्टर !'

'बाहरी जगत् को जिसने अपना लिया है, जीवन को ही जिसने दुःखी की सेवा

को सौंप दिया है, उसे मान-अपमान कैसा ? उसके लिए तो मान-अपमान का प्रश्न ही नहीं उठ सकता निखिल। और विशेषत इनके जाने पर जिसका मरना-जीना निर्भर है। यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि आत्म-सम्मान से जीवन का मोल ज़्यादा होता है।'

'झूठ, बिलकुल झूठ। मौत से आत्म-सम्मान देश के एक अभागे पर न्योछावर करना है, इसमें अपमान को वरदान देना है, आत्म-सम्मान की कसौटी किसीके जीवन-दान से झुकेगी नहीं। मैं फिर भी कहूँगा कि जीवन अनमोल वस्तु है। कौन कह सकता है कि इसके पीछे उसी विनय से दुनिया की भलाई न होगी ? फिर उसे ध्वंस के छोर में ढकेल देना अत्याचार ही नहीं, पाप भी है।

'रोज़ तो हज़ारों अनमोल जीवन हमारे ही अत्याचार से बर्बाद हुआ करते हैं, उनमें से कितने की खबर तुम लिया करते हो ? डाक्टर ?'—निखिल खिलखिलाकर हँस पड़ा।

वे मेरी आँखों से बाहर मरते हैं।'

'यह बात सच नहीं है, केवल मन को समझाना है। ऐसी कितनी घटनाएँ हैं, जो कि हम आंखों से नहीं देख सकते हैं। इससे यह सिद्धान्त नहीं हो सकता कि उनकी खबर हमें नहीं है। जान-बूझकर हम अन्धे बनते हैं यतीश !'

'सभी अन्धे नहीं बनते हैं, इसके सिवा अनुमान से प्रत्यक्ष का प्रभाव कहीं ज्यादा है।'

'नहीं, वास्तव अनुभूति के पास, दोनों ही समान हैं।'

'यह कैसे हो सकता है ? बिहार के उस भयानक भूमिकम्प के लिए क्या तुम्हारी आत्मा वैसी ही रोया करती है, जैसी कि आँखों से देखने के बाद वह दर्दीले आँसू बहाया करती ? और जीवन-भर के लिए उस भीषण ध्वंस का एक अविनाशी चित्र हृदय के पर्दों में रख लेती ?'

'यदि मैं—हाँ कहूँ ?'

'तो यह जान-बूझकर झूठ कहना होगा।'

'सभी को अपने अन्तर की कसौटी में तौलने की तरह और दूसरी कुछ विडम्बना नहीं है यतीश !'

यतीश का मुँह लाल हो उठा, फिर भी उसने अपने को सँभालकर कहा—केवल

मैं तुमसे एक बात और पूछता हूँ कि यदि तुम्हारे सामने कोई पानी में डूबता हो, तो उसे तुम उठा लोगे या डूबने दोगे ?

'उठा लूँगा, अपनी जान देकर भी।'—उसने अकड़कर कहा।

'फिर विनय के लिए इसका उल्टा क्यों हो रहा है ?'

'तुम तो बच्चों की तरह बातें करते हो। उसके सब कोई हैं, फिर भी उसके लिए मैं और मेरी बहन जान देने को तैयार हों ? मान नहीं, आदमी आदमी के लिए अपनी जान दे सकता है ; आत्म-सम्मान नहीं। यदि एक बार ईश्वर भी मेरे आगे आकर कहें कि आत्म-सम्मान के बदले तुम्हें मुक्ति मिलेगी, तो मैं जन्म-जन्मान्तर इसी कीचड़ में पड़ा रहना पसन्द करूँगा, वैसी मुक्ति नहीं।'

'किन्तु···'

यतीश को बाधा देती हुई कजरी निखिल के पैर-तले बैठ गई।

'मैं अपनी सेविका का धर्म, आज तुमसे भीख माँगती हूँ, भैया ! प्रार्थी को लौटा देना, सेविका का धर्म नहीं, अधर्म है। यह बात तुम्हीं ने सिखाई है, जिसे कि आज भूल रहे हो।'

'क्या तू सच ही जाना चाहती है ?'—उसने असन्तोष के साथ पूछा। विस्मय की पहेली उसके सामने थी।

'हाँ।'—उसने धीरे से कहा—बहुत ही धीरे।

'भाई होते हुए भी किसीकी स्वाधीन इच्छा को रोकने का मुझे अधिकार नहीं है, कितने दिनों के लिए ?'

'पाँच मिनट के लिए निखिल !'—उत्तर दिया यतीश ने। प्रतिमा और सरस्वती वहाँ पर खड़ी थीं। प्रतिमा ने मुँह फेर लिया—उसके अन्तर के अन्तरतम देश से एक दर्द-भरी आह निकल आई. सरस्वती ने आँसू की दो बूँदें पोंछीं।

'जाओ बहन !'

कजरी ज़मीन पर बैठ गई— मैं नहीं जाऊँगी।

विस्मय से सभी कजरी की ओर निहारने लगे। सिर नीचे किये हुए भी वह उनके विस्मय का मन-ही-मन अनुभव कर लज्जा से सिहर उठी।

निखिल उसके पास बैठ गया, कजरी के सिर पर हाथ फेरकर उसने आदर से कहा—जाओ बहन, सेविका का धर्म भूलने से कैसे चलेगा ?

'क्या मेरा जाना ज़रूरी है भैया, और उचित भी ?'

इतनी देर के बाद जैसे उसे एक मज़बूत रस्सी मिल गई हो, जिसके सहारे वह उस पार उतर सकती थी।

'हाँ ज़रूरी है, तुम्हारे जाने से वह जी उठेगा।'

द्विविधा-संकोच की समाधि हुई, वह बेसमझ बालिका की भांति पूछने लगी—कहने लगी—सचमुच ऐसा है ? तब तो मुझे जाना ही चाहिए।

स्तब्ध-विस्मय से निखिल कजरी को देखने लगा। केवल एक प्रश्न ने उसके मन को आच्छन्न-सा कर दिया—क्या यह वही कजरी है ?

जमाई के सिर पर बर्फ-भरा बैग धरे नीरोजा बैठी थी। टेबुल पर झुककर मनिका चार्ट लिख रही थी और विनय भुनभुना रहा था—मुझे माफ़ करो कजरी, माफ़ करो।

उसकी आँखें बन्द थीं। भूत देखकर लोग जैसे भीत—स्तम्भित हो जाते हैं, कजरी पर दृष्टि पड़ते ही मनिका वैसे ही स्तब्ध खड़ी रह गई !

कजरी द्वार पर खड़ी थी-- सरस्वती और यतीश उसके पीछे थे।

'आश्चर्य तो इस बात का है कि यहाँ आने की स्पर्द्धा तुम्हें हुई कैसे !' - मारे क्रोध के मनि काँप रही थी।

कठोर मन की नारी, पति मौत के झूले में पड़ा झूल रहा है, फिर भी यह बेसुध है। घमंडिन स्त्री, क्या नहीं जानती है कि कजरी के आने से पति अच्छे हो सकते हैं ? इस ईर्ष्या की भी कहीं थाह है ? यों ही विचारता हुआ डाक्टर बोला—कजरी देवी को मैं ही जबरन् लिवा लाया हूँ।

'क्यों ?'

'आपके पति को जलाने के लिए। उन्हें विनय के सामने जाने दीजिए।'

'यदि जाने न दूँ ?'

'इसमें लाभ नहीं, नुक़सान है। मैं अपनी ड्यूटी कर चुका। रोगी की भलाई ही डाक्टर का कर्तव्य है, इसकी बीमारी मानसिक है। विनय तुम्हारा पति ज़रूर है,

किन्तु मेरा भी मित्र और पेशेण्ट है। इसे बचाने के लिए यदि मुझे ज़बरदस्ती भी करनी पड़े, तो इसके लिए मुझे दोष देना व्यर्थ है।'

'जबरन् ही सही, मैं भी इनकी पत्नी के अधिकार से कहती हूँ कि वह अभी चली जाय।—मनिका पर ज़िद सवार थी। पीछे खड़ी सरस्वती अपमान से काँपने लगीं।

'चलो कजरी?' वे बोलीं।

'कहाँ!'—जैसे कि गहरे कुएँ में से आवाज़ आई हो।

'घर।'—आश्चर्य के साथ सरस्वती ने कहा।

'ज़रा समझकर देखिए केवल पाँच मिनट वक्त मैं माँगता हूँ—कजरी देवी के लिए, विनय का जीवन आप पर निर्भर है।' हाथों से मुँह ढाँककर वह आर्त्तनाद कर उठी—चुप, चुप रहिए, ऐसा नहीं हो सकता। वे जियेंगे। नहीं-नहीं, उसे यहाँ ले जाने को कहो, डाक्टर! वरना मैं मर जाऊँगी। मैं यह न तो देख सकती हूँ और न सह ही सकती हूँ।'

विराट् विस्मय डाक्टर के सामने था. वह अवाक् होकर सोचने लगा—पति की भलाई से जो स्त्री अपनी दुर्बलता, स्वार्थ, ईर्ष्या को ही सब कुछ समझती है, क्या वह भी सहधर्मिणी के नाम से पुकारी जा सकती है? हिन्दुस्तान की नारी ही क्या आज उसके सामने खड़ी है? जिनकी अमर कीर्त्ति, त्याग और संयम से आज भी हिन्दुस्तान गर्वित एवं उज्ज्वल हो रहा है—क्या उसी भारत की सन्तान मनिका भी है? किन्तु कैसे और कब उस कौन-सी शिक्षा, उच्छृङ्खलता ने उसे इतने नीचे उतार दिया? यतीश को हँसी आई, ऐसी नारी भी अपने को सती कहलाने की स्पर्द्धा रखती है!

उसने कहा—फिर भी कहता हूँ—आपका अधिकार चाहे कैसा ही क्यों न हो, परन्तु पति के जीवन लेने का अधिकार किसी भी स्त्री को नहीं है।

अब मनिका का धीरज जाता रहा—आपको बीच में बोलने के लिए मैंने नहीं बुलाया डाक्टर!

'मैं भले के लिए कहता हूँ।'

'मैं भी जानती थी कि डाक्टरी छोड़कर आपने इस पेशे को उठा लिया है।' मनि के ओठों पर परिहास की हँसी थिरक रही थी।

'वे तुम्हारे पति हैं, तुम्हारे ही रहेंगे बहन! जैसे बहन से कभी बहन का अनिष्ट नहीं हो सकता है, वैसे ही डाक्टर बाबू से भी। वे तुम्हारे शुभचिन्तक हैं—यह झूठ नहीं है मनि, यह स्थिति ही ऐसी है कि हर एक को अपने मान-अपमान और हृदय की दुर्बलता को भूल जाना चाहिए। आदमी आदमी के लिए जो कुछ कर सकता है, वह तो तराजू पर तौलने की वस्तु नहीं है बहन।'

मनिका के हृदय में तूफ़ान-सा बहने लगा। यह ज़हरीला प्रश्न उसके अन्तर के कोने-कोने में सर पीटने लगा, 'क्या वे सचमुच न जियेंगे?' इस बार मनिका बोल न सकी, वह कजरी का मुँह निहारने लगी—एक मूर्ति की भाँति।

आँखों से आग की चिनगारियाँ बरसाती हुई नीरोजा उठ आई—कैसी बेहया है! तुम्हें उपदेश देने के लिए किसने बुलाया है? चिल्लाओ मत, विनय की नींद खुल जायगी। पत्नी से ज़्यादा दर्द दूसरे को नहीं हो सकता।

'मैं फिर भी आपको सोचने के लिए कहता हूँ।'

'और मैं कजरी को आदेश देती हूँ—वह अभी चली जाय।'

'नहीं—आप बाहर जाइए।'

'मेरे ही घर में और मुझी को अपमान करनेवाले तुम कौन होते हो?'

'सब कुछ। इस घर की मालकिन आप नहीं, मनिका हैं; यदि वे अब भी कह सकें, तो मैं अभी इन्हें लेकर चला जाऊँगा।'

'नहीं, नहीं; मैं कुछ भी नहीं कहती डाक्टर।'—मनिका ने आँचल से मुँह ढँक लिया।

'जाओ, दूर हो मेरे सामने से।'—यतीश को नहीं, नीरोजा ने कजरी से कहा। वह आपे से बाहर हो चुकी थी।

'चलिए डाक्टर बाबू!'—काँपते हुए स्वर से कजरी ने कहा।

बस, इतने ही पर ऊब गईं कजरी देवी! मैं नहीं जानता था कि आप ऐसा कमज़ोर मन लेकर बाहरी जगत् में आई थीं!'

'इस तरह से आपके पेशेण्ट को लाभ नहीं, हानि होगी, चलिए।'

'मुझे माफ़ी दिये जाओ माफ़ी, माफ़ी, वह चाहती हैं···हमीं को, हमीं को!'—विनय वैसे ही भुनभुनाने लगा।

'लौटो बहन !'—आकुल होकर मनि ने पुकारा।

कजरी ने शायद एक बार विनय की ओर देखा, शायद नहीं देखा, वह चल पड़ी, एक दीर्घ श्वास की तरह।

'आज आश्रम में उत्सव है। डाक्टर बाबू, शाम को आप वहीं भोजन करना।'

कजरी को हँसते देखकर डाक्टर सिहर उठा।

[२१]

उस दिन जब अधीर होकर मनिका बोली - माँ, आज भी तो डाक्टर नहीं आये, उन्हें तुमने कुछ कहा है क्या ?—तब कुछ कहती हुई, बेटी की ओर देखकर रुकी।

'उनसे तुमने क्या कहा है ?'—मनिका ने फिर से पूछा।

'यदि कुछ कह ही दिया, तो क्या हुआ ? क्या वही एक डाक्टर है ?'

'देखती नहीं हो, कल से उनकी हालत कितनी खराब हो रही है। अब ऐसी स्थिति में मैं दूसरे डाक्टर को कैसे बुलाऊँ ! यतीश बाबू की तरह डाक्टर मिलेगा ही कहाँ ?'

'चुप भी रह मनी, इतने बड़े शहर में और डाक्टर ही नहीं हैं, तेरी बातों पर हँसी आ जाती है।'

'कहती थी कि उनके सिवा किसी और पर मुझे विश्वास नहीं।'

'उसने तुम दोनों आदमी पर जादू कर दिया है। मैं उसे अच्छी तरह जानती हूँ। वह डाक्टर अच्छा नहीं है। कजरी पर वह जान देता है, जैसी कजरी, वैसा वह।'

'छिः माँ, मुँह से चाहे कजरी जो कुछ भी कहे, पर बचपन से उसे क्या मैं नहीं पहचानती या तुम्हीं नहीं पहचानतीं ?'

'आँखों देखकर भी तू उसके लिए लड़ रही है ?'

'लड़ती नहीं, जो कुछ सच है, वह कह रही हूँ।'

'सच नहीं, यह तेरा भ्रम है।'

'हो सकता है, यदि यह भ्रम है तो उसी में मैं सन्तुष्ट हूँ। तुमसे हाथ जोड़ती , इसे भ्रम ही रहने दो।'

'तुझे आज हो क्या गया है मनि ?'

'मत पूछो माँ, मुझे सोचने के लिए समय दो।'

'उसे भूल समझा था, भूल-भूल, कजरी!'—विनय एक बार चिल्ला उठा।

मनिका ने आँसू पोछे, और चमचे में दवा लेकर पति के पास बैठ गई—दवा पी लो।

'तुम कौन हो?'—विनय ने आँखें खोलीं।

उत्तर न देकर मनि धीरे-धीरे पंखा झलने लगी।

'मुझे माफ़ करो कजरी!'—विनय उत्तेजित हो रहा था।

'कजरी को बुला लाऊँ?'

कजरी का नाम सुनकर विनय आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा।

'कहाँ है, वह कहाँ है?'

'चुपचाप ज़रा-सा सो रहो, वह अभी आती है।'

'कजरी?'—अविश्वास के साथ विनय ने पूछा।

'हाँ!'

'वह अब न आयेगी।'

पति के उस व्यथा-हत निराश स्वर ने मनिका को विकल कर दिया। वह उठकर बाहर आई।

मोटर पर चढ़ते समय नोरोजा ने द्वार पर से आवाज़ लगाई—कहाँ जा रही हो?

'कजरी को लेने के लिए।'

'क्या तू सच ही पागल हो गई है?'

'तुम उनके पास बैठो, पाँच मिनट में मैं लौटूँगी।'

'उसे लाकर क्या करेगी?'

'पति के जीवन की भीख माँगूँगी।'

'उससे?'

'हाँ, उसी से।'

'क्या वह कोई देवी है, जो तुझे वरदान देगी?'

'सो तो मैं जानती नहीं हूँ। यदि जानती हूँ तो केवल इतना ही। कि आज खाली वही एक है, जो मुझे वरदान दे सकती है।'

'मैं कहती हूँ कि तू वहाँ मत जा।'

उत्तर न देकर मनिका ने मोटर का दरवाज़ा बन्द कर लिया।

क्रोध और अपमान से नीरोजा का सुन्दर चेहरा काला पड़ गया।

[२२]

कमरे में बैठी हुई कजरी आँसू बहा रही थी। वह उस बहते हुए आँसू को रोकना चाहती थी, छिपाना चाहती थी, दुनिया के पर्दे में पराजय की कहानी छिपी रह जायगी। उन आँसुओं के हरएक बूँद के साथ कजरी बह नहीं सकती थी, मरने के पीछे भी। जगत् की सहानुभूति? नहीं, वह उस सहानुभूति की प्यासी नहीं है, जो कि केवल मौखिकता के छद्म-आवरण से ढँका हुआ है। दुःख, व्यथा, कष्ट, अपमान, दाह, बस ये ही तो उसके अनमोल खज़ाने हैं जो कि दुनिया ने अपने खोह-कन्दरों में भरकर उसी के लिए रख छोड़े थे। दुनिया के उस दान को उसने दोनों हाथों से उठा लिया अह्लाद के साथ। शायद सन्तोष था, शायद नहीं था, केवल विषाद—निरानन्द। दर्द ही रहा हो, किन्तु जो कुछ कि वह पा चुकी है, उसे वह सहेगी भी, हाँ अकेले ही। किन्तु वे आँसू बतला रहे थे—उसकी सहन-सीमा की रेखा को—एक हलके-से इशारे से और उसकी अन्तर की नारी सिर पीट रही थी—वे ही शब्द सुनने के लिए—'मुझे माफ़ी दिये जाओ कजरी!' वे शब्द थे उसके पति के, हाँ, उसीके प्रियतम के। यद्यपि वह उसका पति था—प्रेम, भक्ति, आदर की माला पति के लिहाज़ से उसीको दिया करती थी, फिर भी वह उससे दूर रहना चाहती थी। यह बात तो झूठ नहीं है, फिर आज यह अदृष्ट का परिहास कैसा और किस लिए? कजरी के अन्तर में प्रश्नों की झड़ी-सी लग गई। मरण-मुख पति के आगे से वह जबरन् हटा ली गई, कौन-से सुविचार के फल से? यदि वे न जीयें? किन्तु प्रिय के लिए दो बूँद आँसू बहाने का भी उसे अधिकार क्यों नहीं है? यदि आँसू न रुके? स्नेह-प्रेम से क्या लोकाचार ही बड़ा है? फिर उस प्रेम को पावन क्यों कहते हैं? प्रेम क्या कवियों की निरी कल्पना ही है? क्या उन्हें देखने तक का अधिकार नहीं है? दूर से भी? एक भिखारिन की तरह दुतकारी गई, क्या वह प्रेम का पुरस्कार था? प्रेम, भक्ति, स्नेह से क्या विवाहित अधिकार श्रेष्ठ है? कजरी ने अपने अन्तर की ओर झाँककर देखा—अपना कहकर दावा करने के लिए

कहीं पर कुछ भी न था। वह इतनी बड़ी दुनिया में अकेली थी, तो ऐसे जीवन का बोझ कब तक ढोती फिरेगी ? वह सिसक-सिसककर रोने लगी—थोड़ी देर के लिए, अचानक उसकी दृष्टि उस मुट्ठी-भर आदमी के चित्र पर जा गिरी, जो कि सेवा का महान् और अविनाशी रूप था। उत्तर मिल गया—दुःख, दर्द, अभाव जाता रहा। कौन कहता है, वह अकेली है ? सेवा उसकी माँ, बहन, पति, पुत्र और सहेली है। उसके ओठों पर दिवाली की दीवट की-सी मीठी, शान्ति से भरी हुई हँसी थिरकने लगी।

कल्पना को वास्तव ने जीवन दे दिया। मनिका उसके गले से लिपट गई। 'चलो बहन !'—मनि ने धीरे से कहा।

'कहाँ ?'—कजरी फिर अपने को भूल रही थी।

'घर चलो, तुम्हें लेने आई हूँ।'

'नहीं।'—वह सहम चुकी थी।

'आज तुझसे पति की जीवन-भीख माँग रही हूँ। चल बहन, आज उन्हें तेरे माथे पर रख दूँगी, सदा के लिए। उनकी प्रिया मैं नहीं, तू है। मैं तो एक अभागी पत्नी हूँ, उनके प्रेम की अधिकारिणी नहीं ?'

'ऐसा नहीं हो सकता और तेरा ही एकनिष्ठ प्रेम उन्हें मरण-द्वार से खींच भी लायेगा, मेरा जाना असम्भव है।'—प्रशान्त दृढ़ता के साथ कजरी ने कहा।

'एक दिन जो सम्भव था, आज वह असम्भव क्यों है कजरी ?'

ऐसी स्थिति में भी कजरी खिलखिलाकर हँस पड़ी।

'तू वैसी ही है मनि ! ज़रा भी नहीं बदली। वही ज़िद, बच्चों की तरह बेसमझ-सा प्रश्न। देर हो रही है, वे अकेले होंगे, तू जा।'

'जनम-भर के लिए नहीं जाती, तो पाँच ही मिनट के लिए चल। वे तेरे लिए जान देने को बैठे हैं और मैं उनकी पत्नी होकर भी दूर खड़ी देखती रहूँ ? उनका दुःख मुझसे नहीं सहा जाता।'—वह विकल होकर रोने लगी।

आदर से उसके आँसू पोंछकर कजरी ने कहा—यदि वे अपने मन की दुर्बलता के लिए दुःख भोगें, तो पत्नी इसके लिए दायी नहीं है और न उस कमजोर मन की कल्पना को ही बढ़ावा देना पत्नी का धर्म है। फिर भी कहती हूँ मनि, तू लौट जा, देर हो रही है।

'चलो कजरी, वह दृश्य, वे दर्दीले, आतुर शब्द मैं नहीं देख-सुन सकती। जो सदा के लिए दुनिया को बिदाई ले रहे हैं, उन पर क्रोध, दुःख, मान, अपमान कैसा कजरी ?'

'कहाँ का क्रोध ? कैसा अपमान ?'

'नहीं तो क्या ? फिर तू चलती क्यों नहीं ? उनके जाते समय यदि मैं ज़रा-सा सन्तोष, शान्ति दे सकती, उनकी इच्छा पूरी कर सकती तो आज मेरा नारी जीवन, सहधर्मिणी-जीवन सफल हो जाता।'

'पर मैं ऐसा नहीं समझती।'

'कैसा ?'

'वह बात तू सह नहीं सकती, चल तुझे गाड़ी पर बिठा दूँ।'—कजरी आगे बढ़ी, वह उन बातों को बढ़ाना नहीं चाहती थी।

जब मनिका गाड़ी पर बैठी, तब गम्भीर-विस्मय से वह आछन्न-सी हो रही थी। वह विचारने लगी—यही है कजरी ? उसके अन्तर का नग्न रूप ऐसा भयानक है ? और इसी के द्वार पर वह भीख की झोली पसारने आई थी ?

[२३]

मनिका की हँसी की फुलवारी फिर से झरने लग गई थी।

विनय अच्छा हो उठा बहुत दिनों के बाद।

वायु-परिवर्तन की तैयारी होने लगी।

यतीश उस दिन कजरी से मिलने के लिए आया था।

'आप अब कैसी हैं ?'—उसने कजरी से पूछा।

'अच्छी हूँ, वैसी कमज़ोरी नहीं है।'

'चेंज से वह भी निकल जायगी। कब तक जाने का विचार है ? विनय तो जल्दी जा रहा है, जाने के पहले वह आपसे मिलना चाहता है। कल वैसे आँधी-पानी में भी आ रहा था, मैंने मुश्किल से रोका। कमज़ोरी पर ठण्ड लगने से फिर से बीमार पड़ जाता।'

'चलिए डाक्टर बाबू, चरखा दिखलाऊँ, नये ढंग का बना है।'

उन बातों को वह सुनना नहीं चाहती थी।

मुसकान की एक हलकी-सी लकीर यतीश के मुँह पर खिंच गई— चलिए।

संध्या समय मीना ने कजरी को पुकारा -- देखो दीदी, कौन आये हैं ? बेचारे कैसे कमज़ोर हो गये हैं, फिर भी तुमसे मिलने आये हैं। तुम्हारे भैया वहाँ हैं, वे तुम्हें पुकार रहे हैं।

कटोरों में खीर परसती हुई कजरी बोली आज जन्माष्टमी है, मैं ठाकुर के घर में जाती हूँ, इधर का सब तुम देखना भाभी !

'तो विनय बाबू से मिलोगी नहीं ?'

'और सुनो, उस बड़े कटोरे की खीर सरकार काका को देना। दूध आलमारी में है, रमजान को भेज देना; साबूदाना भी।'

कजरी चली गई; परन्तु मीना वैसे ही खड़ी रह गई। रात में भोजन करते समय कजरी ने निखिल से कहा— जगन्नाथपुरी जायँगे भैया !

'मैं भी वही सोच रहा था -- तुम्हें हवा बदलने के लिए कहीं पर भेज दिया जाय, कब तक जाने का विचार है ?

'कल। बूआ, मैं और सरकार काका भी।'

'क्या तैयारी कर चुकी हो ?'—आश्चर्य के साथ उसने पूछा।

'हाँ।'—कजरी ने मुँह फेर लिया, वह अपने को निखिल के सामने छिपाना चाहती थी।

'जाओ।'—कुछ विचारकर उसने कहा – पर जल्दी आना, काम इतना बढ़ा बैठी हो कि बिना तुम्हारे हमसे सँभलेगा नहीं, डर रहा हूँ बहन।

'जल्दी लौटूँगी भैया, माँ और भाभी तुम्हें मदद देती रहेंगी।'

दूसरे दिन सबेरे से कजरी आश्रम-वासियों के प्रत्येक के घर में जाकर मिलने लगी और अपने दर्दीले हाथों से उनके आँसू पोंछती हुई घर लौटी।

सन्ध्या समय उन सबों के शुभ आशीष के नीचे बिदा लेती हुई वह मीना के गले से लिपट गई—भाभी, मेरे बच्चों को, माँ, बहन को आज से तुम देखना।

'पर अपनी शक्ति थोड़ी-सी मुझे भी देती जाना बहन !'

'घबराओ मत, वह किसीसे माँगने की चीज़ नहीं है, कहती थी—वह शक्ति

तुम्हारे अन्तर में, तुम्हारी हर एक नस में भरी पड़ी है, उसे जगा लेना, धीरे, बहुत धीरे।'

'झूठ।'

'झूठ नहीं सच कहती हूँ।' कजरी हँस पड़ी।

सभी से बिदा लेने के बाद उसने यतीश को पुकारा—डाक्टर बाबू!

उत्तर न पाकर उसने फिर पुकारा—डाक्टर बाबू!—उस आवाज़ के अणु-परमाणु में दर्द की नदी बह रही थी। यतीश ने सिर नवा लिया। शायद उन दो आँसुओं की करुण कहानी को उस तरुणी के आगे छिपाना चाहता हो।

[२४]

पुरी पहुँचकर समुद्र के किनारे कजरी ने दिन बिताना शुरू कर दिया। वह उस विराट्—विराट् रूप को आँखें फाड़-फाड़कर देखती रहती—अन्तर में प्रश्नों की झड़ी-सी लग जाती—यह कैसा अनन्त रूप है? कभी गम्भीर है, तो कभी सरल; कभी नवोढ़ा है, तो कभी प्रौढ़ा। कभी प्रकृति है, तो कभी पुरुष। कभी ध्वंस है, तो कभी सृष्टि। कभी सुन्दर है, तो कभी भयानक। कभी स्थिर है, तो कभी चंचल। कभी आँसू है, तो कभी खुशी। कभी नूतन है, तो कभी चिर-पुरातन। इत्यादि विस्मय-आकुल दृष्टि से वह देखती रहती। सन्तोष, आह्लाद से हृदय पूर्ण हो जाता। समुद्र उसे अपनी ओर खींचा करता, अनमनी कजरी समुद्र-तट तक चली जाती।

उस दिन अचानक एक पथिक पर दृष्टि पड़ते ही कजरी चौंक पड़ी। एक अनोखी पहेली उसके आगे थी, वह मनिका व विनय की दृष्टि से छिपती हुई दूसरी ओर भागी। वह जान न सकी कि विनय उसे भली भाँति देख चुका था; किन्तु मनिका ने उसका पिछला हिस्सा ही देखा था। उसने पति से कहा—देखो, यहाँ भी औरतें खादी पहनती हैं।

'हाँ।'—विनय ने धीरे से कहा।

'अच्छा, वह यहाँ आती-आती लौटी क्यों?'

उत्तर न पाकर वह चिढ़ी आजकल तुम चौबीसों घण्टे इतना सोचते क्या रहते हो?

'कुछ तो नहीं।' वह ज़बरन् ही हँसना चाहता था।

'क्यों झूठ बोलते हो ?' उसने झुँझलाकर कहा ।

'तुम तो चिढ़ती हो मनि, अच्छा लो, अब मौन ही साधे रहूँगा ।' इस बार विनय हँस पड़ा ।

घर लौटकर कजरी ने सरस्वती से कहा—अब मैं अच्छी हो गई बूआ, घर चलो ।

'अभी महीना भी नहीं हुआ, इस लड़की को सभी में जल्दी पड़ी रहती है । निखिल क्या कहेगा ? तेरी तबीयत वैसी ही है, कुछ अच्छी हो जा, तब चलने का नाम लेना ।'

'नहीं, आज चलो ।' एक हठीली बालिका की भाँति मचलती हुई वह बोली ।

सरस्वती उसका मुँह निहारने लगी---सबेरे तक तू खुशी के साथ थी, अभी-अभी क्या हो गया बेटी ?

'यहाँ अच्छा नहीं लगता ।'

'चार-छः दिन और ठहर जा, निखिल को चिट्ठी लिखकर पूछ लूँ ? वह चिन्तित हो रही थी । 'क्या हुआ है बेटी ?'

जवाब न देकर कजरी चुपचाप हट गई ।

प्रतिदिन की भाँति उस दिन भी कजरी रात में समुद्र-तट पर आकर बैठ गई । ठण्डी हवा में महरी सो रही थी, घर ही में थी, पैर में दर्द था ; इसलिए वह न आई थी ।

आकुल चाँदनी पृथ्वी की गोद में लेट रही थी और अथाह समुद्र में । मुग्ध दृष्टि से कजरी प्रकृति के उस मोहक रूप को देखने लगी ।

'कजरी !' किसीने स्नेह सने स्वर से पुकारा—कजरी, कजरी मेरी !...

'तुम ! तुम !'—कजरी चौंकी ।

'हाँ, मैं पूछता था कि तुम्हारा यह लुक-छिपकर खेलना कब तक चलेगा ? यतीश से मैं सब कुछ सुन चुका हूँ । सुनो, सुनो, भागो नहीं ।' विनय ने हाथ फैलाकर उसे रोक लिया ।

चाँद अमृत की वर्षा में लगा हुआ था और समुद्र-सुधा की मतवाली चाँदनी उन दोनों से लिपट गई । अपने-आपको भूलकर उसी पहली रात में वे दोनों खड़े थे, एक दूसरे के सामने ।

'सरोज के मरते समय यतीश बाहर खड़ा सब कुछ देख-सुन रहा था।'

'फिर इससे क्या ?'—उदास व्यथा से उसने पूछा।

'तुम्हारे लिए नहीं, पर मेरे लिए तो वह सब कुछ है कजरी !'

'नहीं, सत्य सदा सत्य ही रहता है।'

'मैं उन बातों को सुनना नहीं चाहता और न सह ही सकता हूँ ! नाहीं मत करो, उस दिन जो सह सका था, आज वही बात सहना कठिन ही नहीं, वरन् असंभव भी है। उस विनय की मौत हो चुकी है। अब जो जी रहा है, वह केवल तुम्हारा पुजारी, तुम्हारा पति है। मनिका ? हाँ, मैं भली भाँति जानता हूँ कि तुम्हारा प्रेम उसे बहन बना लेगा।' कजरी खड़ी-खड़ी काँपने लगी। उसके अन्तर की प्रेयसी नारी पागल हो रही थी। प्रेम व्याकुल हो रहा था, प्रेम के सामने अपने अन्तर का नग्न रूप दिखलाने के लिए। हृदय मतवाला हो रहा था, उन सम्मोहन शब्दों को बार-बार सुनने के लिए। आँखें अधीर हो रही थीं, उन नशीली आँखों को देखने के लिए।

'कजरी !' - व्याकुल कंठ से विनय ने पुकारा—कजरी, मेरी कजरी !

'हाँ।' स्वर धीमा और मीठा था, मानो स्वप्न के देश में किसीने विचरते हुए उत्तर दिया हो—हाँ !

विनय के स्पर्श से उसकी चेतना लौटी, वह सहमकर बोली—इसके बाद क्या तुम मुझे इसी तरह प्रेम-प्यार कर सकोगे ?

'हाँ रानी, जीवन-भर ! परम आग्रह के साथ विनय ने उत्तर दिया।

'कहती थी -- जो नारी वचन का मोल नहीं दे सकती है, जो स्त्री किसी मरन-सेज की सौगन्ध को अपने सुख-आराम के आगे बलि दे सकती है, क्या वह भी सहधर्मिणी कहलाने की स्पर्द्धा रख सकती है ? या तुम्हीं उसे किसी भी दिन पत्नी के रूप में और सन्तान की माँ के रूप में स्वीकार ही कर सकते हो ?'

'मैं सब कुछ कर सकता हूँ कजरी, तुम मेरा जीवन हो।'

इस बार कजरी ने पूर्ण दृष्टि से विनय की ओर देखा।

'झूठ, बिलकुल झूठ। वैसी स्त्री को न तो तुम ही क्षमा कर सकते हो और न मैं ही। जब कि मैं दुनिया की दृष्टि से और अपनी दृष्टि से इतने नीचे गिर जाऊँगी,

उस वक्त क्या मैं ही अपनी भक्ति, प्रेम, आदर की पूजा तुम्हारे चरणों तक पहुँचा सकूँगी ?'

'बस, बस बस करो कजरी, क्या मेरे लिए तुमने केवल ज़हर ही भरकर रखा था ?'

हाथों से मुँह ढाँककर विनय बालू पर बैठ गया।